मई, 2019
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

cover ii

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक	: श्री पुण्डरीक शर्मा
उप-संपादक	: सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह
परामर्शदाता	: सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN- 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2019 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा................................ द्वारा मुद्रित ।

पी एल डी (सी. डी)-5-2019 आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

मई, 2019 अंक - 5

प्रधान संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक

अविनाश शुक्ला

(2019) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website → https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

मैं, इस संपादकीय के माध्यम से आपका ध्यान भारत सरकार द्वारा नागरिकता कानून में प्रस्तावित संशोधनों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं । इन संशोधनों के माध्यम से भारत सरकार विस्थापित होकर आए हिंदुओं, सिखों, बौद्धों, जैनियों और ईसाइयों इत्यादि को भारत की नागरिकता प्रदान करने पर विचार कर रही है चाहे उनके पास नागरिकता प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ कोई भी दस्तावेजी अथवा अन्य साक्ष्य उपलब्ध न हों । इन प्रस्तावित संशोधनों की आवश्यकता को समझने के लिए इतिहास में जाना होगा । वर्ष 1947 में देश के विभाजन के समय पाकिस्तान के गवर्नर जनरल मो. अली जिन्ना ने कहा था कि हम रंग और नस्ल के भेदभाव से परे देश बनाकर दिखाएंगे । जिन्ना ने अपने इसी वायदे को साबित करने के लिए स्वेच्छा से पाकिस्तान को अपना देश मानने वाले श्री जोगेन्द्र नाथ मंडल को मंत्रिमंडल में सम्मिलित किया और उनको विधि मंत्री बनाया । जिन्ना के इसी वायदे के कारण लाखों हिंदुओं और सिखों ने स्वेच्छा से पाकिस्तान में रहना स्वीकार किया । परंतु जिन्ना का यह वादा असत्य साबित हुआ और पाकिस्तान में हिंदुओं और सिखों समेत सभी अल्पसंख्यकों के लिए अपनी संपत्ति, संस्कृति और परंपराएं ही नहीं बल्कि इज्जत की रक्षा करना भी मुश्किल होता गया और उनको शीघ्र ही हिंसा, लूट और जबरन धर्मांतरण का सामना करना पड़ा । श्री जोगेन्द्र नाथ मंडल 1940 के दशक में दलितों के बड़े नेता थे । वे बाबा साहेब अम्बेडकर की विचारधारा के विपरीत मुस्लिम लीग में सम्मिलित हो गए थे । देश के विभाजन के पश्चात् उन्हें

पाकिस्तान में विधि मंत्री और संविधान सभा का सदस्य भी बनाया गया। परंतु वे भी अपने दलित समुदाय के लोगों के साथ धर्म के नाम पर होने वाली बर्बरता के समक्ष असहाय हो गए और अंतत: उनको मजबूर होकर तारीख 8 अक्तूबर, 1950 को मंत्रिमंडल से त्यागपत्र देना पड़ा। इस पत्र में उन्होंने लिखा था कि मैं काफी विचार-विमर्श के उपरांत इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि पाकिस्तान में हिंदुओं का कोई भविष्य नहीं है और इस देश में अल्पसंख्यकों के विरुद्ध दमन की राजनीति के कारण उनके लिए अंधकार ही रहेगा। अंतत: उन्हें भारत लौटना पड़ा लेकिन यहां भी उन्हें अपमान का सामना करना पड़ा क्योंकि लोगों ने उन्हें गद्दार करार दिया और वे गुमनामी के अंधेरे में ही चल बसे। पाकिस्तान के संविधान के अनुच्छेद 91 में स्पष्ट लिखा है कि वहां का प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति होने के लिए मुस्लिम धर्म का अनुयायी होना आवश्यक है और कोई हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन या ईसाई वहां पर प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति के पद पर सुशोभित नहीं हो सकता। पाकिस्तान में धार्मिक अल्पसंख्यकों की बदतर हालत पर भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू और पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री लियाकत अली खान के बीच वार्ता भी हुई थी और दोनों नेताओं के बीच तारीख 8 अप्रैल, 1950 को एक समझौता हुआ था। इस समझौते के अंतर्गत दोनों देशों ने अपने यहां के अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का वचन दिया था। परंतु वर्तमान में पाकिस्तान में मात्र एक प्रतिशत धार्मिक अल्पसंख्यक शेष रह गए हैं। करांची जैसा शहर, जहां 51 प्रतिशत हिंदू और अन्य गैर-मुस्लिम थे, वर्तमान में 1 प्रतिशत से भी कम हैं। पाकिस्तान के सभी धार्मिक अल्पसंख्यक विस्थापित होकर भारत आते हैं और भारत का यह कर्तव्य है कि उनको नागरिकता प्रदान करे। इसी कारणवश वर्तमान सरकार जिस नागरिकता कानून की बात कर रही है उसका मकसद समझ में आता है।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणवत्ता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं। अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

मई, 2019

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अली पट्टक्कल **बनाम** शाहिदा बीवी और अन्य	644
गुतुंग वेट्टाली फिशरी को-आपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड, असम **बनाम** असम राज्य और अन्य	652
देव दास राउथ **बनाम** हिंदूजा लेलैंड फाइनेंश लिमिटेड	567
नायब सिंह और अन्य **बनाम** गगन गोपाल और एक अन्य	686
मनीष पोद्दार **बनाम** एस. पेरुमल राज	636
मयंक गिरि **बनाम** दिव्या गिरि **उर्फ** दिव्या चौधरी	658
राम स्वरूप सिंह गूजर **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य और अन्य	703
वी. राजेन्द्रन (मृतक) **बनाम** के. चिन्ना पिल्लई और एक अन्य	691

संसद् के अधिनियम

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 44

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

मध्य प्रदेश पंचायत राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम, 1994 (1994 का 1)

– धारा 40 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14] – निर्वाचित सरपंच – वित्तीय अनियमितता के आधार पर पद से हटाया जाना – पदधारित व्यक्ति को हटाने से पूर्व सुनवाई का कोई अवसर न दिया जाना – नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण का प्रश्न – त्रुटिपूर्ण जांच के आधार पर पद से हटाने की कार्यवाही का अनुमोदन नहीं किया जा सकता – अतः पद से हटाने के आदेश को अभिखंडित करके मामला विधि के अनुसार निपटाने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाना चाहिए ।

राम स्वरूप सिंह गूजर बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य** 703

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1966 का 26)

– धारा 2(1)(ङ)(i) और 9 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 21] – माध्यस्थम् करार में समाविष्ट फोरम चयन खंड – पक्षों द्वारा फोरम चयन खंड के अंतर्गत नामित न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के विरुद्ध आक्षेप – याचिका में उन कारणों का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए कि पक्षों द्वारा करार में उल्लिखित फोरम चयन खंड के अंतर्गत नामित न्यायालय किसी कार्रवाई पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ सक्षम क्यों नहीं होगा ।

देव दास राउथ बनाम **हिंदूजा लेलैंड फाइनेंश लिमिटेड** 567

पृष्ठ संख्या

– धारा 2(1)(ङ)(i) और 42 [सपठित माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम का भाग-1 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 16 और 20 और कलकत्ता उच्च न्यायालय के लेटर्स पेटेंट नियम का खंड 12] – घरेलू माध्यस्थम् – माध्यस्थम् निदेश का स्थान – पक्षों द्वारा अनन्य न्यायालय के रूप में फोरम का चयन – उसी न्यायालय को याचिकाओं पर विचार करने की अनन्य अधिकारिता प्राप्त होगी जिसका चयन पक्षों द्वारा माध्यस्थम् करार में समाविष्ट फोरम चयन खंड के उपबंधों के अंतर्गत किया गया है ।

देव दास राउथ बनाम **हिंदूजा लेलैंड फाइनेंश लिमिटेड** 567

मुस्लिम विधि

– पत्नी और पुत्र द्वारा भरण-पोषण के लिए दावा – प्रतिवादी द्वारा किसी प्रकार की नातेदारी अर्थात् विवाह से इनकार – वादियों द्वारा विवाह के संबंध में जमात का प्रमाण-पत्र पेश न किया जाना – प्रभाव – किसी विवाह को साबित करने के लिए जमात का प्रमाण-पत्र पेश किया जाना आवश्यक नहीं है – जहां अन्य साक्ष्यों से विधिमान्य विवाह का सम्पन्न होना साबित होता हो वहां प्रतिवादी भरण-पोषण के अपने दायित्व से इनकार नहीं कर सकता ।

अली पट्टक्कल बनाम **शाहिदा बीवी और अन्य** 644

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 20 – भूमि विक्रीत करने के लिए विक्रय-करार

पृष्ठ संख्या

– अग्रिम धन के रूप में 20 लाख रुपए का संदाय – वादियों द्वारा नियत तारीख़ को विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय में उपस्थिति – प्रतिवादियों द्वारा संपत्ति अन्य व्यक्ति को विक्रीत की जानी – वादियों द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – निचले न्यायालयों द्वारा ब्याज सहित अग्रिम धन की वापसी के लिए वाद डिक्री किया जाना – चूंकि प्रतिवादी संविदा के अपने भाग का पालन करने में विफल रहे हैं – अत: न्यायालयों द्वारा अग्रिम धन के प्रतिदाय का आदेश न्यायोचित है – प्रतिवादियों की अपील खारिज होने योग्य है ।

नायब सिंह और अन्य बनाम **गगन गोपाल और एक अन्य** 686

– धारा 37 और 38 – वादी द्वारा व्यादेश के लिए वाद – वादी द्वारा संपत्ति पर अपना क़ब्जा साबित किया जाना – प्रथम अपील न्यायालय द्वारा इनकार करने के लिए राजस्व प्राधिकारियों के आदेशों का अवलंब लिया जाना – जहां वादी द्वारा संपत्ति पर अपना विधिक क़ब्जा साबित कर दिया गया हो वहां राजस्व प्राधिकारियों के आदेशों का अवलंब लेकर व्यादेश जारी करने से इनकार करना न्यायोचित नहीं है ।

वी. राजेन्द्रन (मृतक) बनाम **के. चिन्ना पिल्लई और एक अन्य** 691

– धारा 38 – वादी द्वारा पट्टे पर ली गई संपत्ति को भोग-बंधक के साथ प्रतिवादी के हक़ में बंधक किया जाना – बाद में वादी द्वारा संपत्ति का मोचन कराकर

पृष्ठ संख्या

संपत्ति का क़ब्जा वापस लिया जाना – प्रतिवादी द्वारा पट्टा रद्द होने का कथन किया जाना – वादी द्वारा बंधकदार और उसके प्रतिनिधियों को संपत्ति पर हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए व्यादेश जारी करने के लिए वाद – अपील न्यायालय द्वारा क़ब्जे के संबंध में राजस्व प्राधिकारियों के आदेशों का अवलंब लिया जाना – किसी न्यायालय के निष्कर्ष उसके समक्ष पेश किए गए साक्ष्य और दस्तावेज़ों पर आधारित होना चाहिए – राजस्व दस्तावेज किसी तथ्य को साबित करने के लिए सुसंगत हो सकते हैं – तथापि, वे निर्णय पारित करने के लिए आधार नहीं बन सकते ।

वी. राजेन्द्रन (मृतक) बनाम **के. चिन्ना पिल्लई और एक अन्य** 691

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14 और 299 और मत्स्य पालन अधिनियम, 1897 – धारा 6 [सपठित असम मत्स्य पालन नियम, 1953 का नियम 50 (सरकारी अधिसूचना सं. फिश-2/2000/171 द्वारा यथा संशोधित)] – मत्स्य पालन के लिए निविदा – प्राधिकारी द्वारा 3 वर्ष की अवधि के लिए निविदा आमंत्रण सूचना – बाद में उक्त सूचना को वापस लेते हुए 7 वर्ष के व्यवस्थापन के लिए निविदा आमंत्रण सूचना के लिए संदेश जारी किया जाना – चुनौती – चूंकि संशोधित सूचना संदेश नियम 50 के अनुसरण में है अत: ऐसी निविदा आमंत्रण सूचना संदेश को अवैध नहीं ठहराया जा सकता ।

गुतुंग वेट्टाली फिशरी को-आपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड, असम बनाम **असम राज्य और अन्य** 652

पृष्ठ संख्या

साक्ष्य अधिनियम, 1872

– धारा 112 – उपधारणा – वादियों द्‌वारा भरण-पोषण के लिए दावा – प्रतिवादी द्‌वारा विवाह होने और बच्चे का पिता होने से इनकार – जहां विवाह साबित हो गया हो वहां यह उपधारणा की जा सकती है कि अभिकथित बालक माता-पिता के विवाह से ही उत्पन्न हुआ है – अत: पिता बच्चे के भरण-पोषण के लिए जिम्मेदार है ।

अली पट्टक्कल बनाम **शाहिदा बीवी और अन्य** 644

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 8, नियम 5 और धारा 34 – ऋण का प्रदाय – वसूली – मौखिक करार में यह निबंधन होना कि यदि प्रतिवादी एक वर्ष के भीतर ऋण का प्रतिदाय करने में विफ़ल रहता है तो वह 18 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज का संदाय करने के लिए दायी होगा – प्रतिवादी द्‌वारा लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध न किया जाना – जहां प्रतिवादी द्‌वारा वाद में किए गए कथनों का प्रत्याख्यान या विरोध नहीं किया जाता है वहां यह माना जाएगा कि प्रतिवादी ने प्रकथनों को स्वीकार कर लिया है – अत: वादी डिक्री पाने का हक़दार है – तथापि, 18 प्रतिशत मांगा गया ब्याज किसी दस्तावेजी साक्ष्य से समर्थित न होने के कारण 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज मंजूर करने से न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा ।

मनीष पोद्दार बनाम **एस. पेरुमल राज** 636

पृष्ठ संख्या

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 9 और 11 – हिन्दू विवाह – दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन – पत्नी द्वारा प्रति-दावे में विवाह को अकृत घोषित करने के लिए अनुरोध – पत्नी और उसके माता-पिता द्वारा यह कथन किया जाना कि प्रत्यर्थी का व्यपहरण करके बलपूर्वक और धमकियां देकर विवाह किया गया था – आवेदक द्वारा हिन्दू धर्म के रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों के साथ विवाह को साबित न किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा आवेदन की खारिजी – विचारण न्यायालय का निर्णय उचित होने के कारण निर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

मयंक गिरि बनाम **दिव्या गिरि** उर्फ **दिव्या चौधरी** 658

देव दास राउथ

बनाम

हिंदूजा लेलैंड फाइनेंश लिमिटेड

तारीख 11 सितंबर, 2018

न्यायमूर्ति संजीव बनर्जी और अभिजीत गंगोपाध्याय

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) – धारा 2(1)(ङ)(i) और 42 [सपठित माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम का भाग-1 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 16 और 20 और कलकत्ता उच्च न्यायालय के लेटर्स पेटेंट नियम का खंड 12] – घरेलू माध्यस्थम् – माध्यस्थम् निदेश का स्थान – पक्षों द्वारा अनन्य न्यायालय के रूप में फोरम का चयन – उसी न्यायालय को याचिकाओं पर विचार करने की अनन्य अधिकारिता प्राप्त होगी जिसका चयन पक्षों द्वारा माध्यस्थम् करार में समाविष्ट फोरम चयन खंड के उपबंधों के अंतर्गत किया गया है ।

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 – धारा 2(1)(ङ)(i) और 9 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 21] – माध्यस्थम् करार में समाविष्ट फोरम चयन खंड – पक्षों द्वारा फोरम चयन खंड के अंतर्गत नामित न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के विरुद्ध आक्षेप – याचिका में उन कारणों का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए कि पक्षों द्वारा करार में उल्लिखित फोरम चयन खंड के अंतर्गत नामित न्यायालय किसी कार्रवाई पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ सक्षम क्यों नहीं होगा ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि ये अपील माध्यस्थम् न्यायालय द्वारा तारीख 15 दिसंबर, 2017 को पारित एक ही निर्णय और आदेश, जिसके द्वारा इंडस मोबाइल डिस्ट्रीब्यूशन प्राइवेट लिमिटेड वाले मामले में अधिकथित प्रतिपादना को अनुपयोज्य अभिनिर्धारित

किया गया, से उद्भूत होती हैं । साथ ही 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 2(1)(ङ) के निर्वचन का मामला भी अंतर्वलित है और यह मामला भी अंतर्वलित है कि इस उपबंध पर इंडस मोबाइल डिस्ट्रीब्यूशन प्राइवेट लिमिटेड वाले मामले में किस प्रकार विचार किया गया है । इस मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इंडस मोबाइल वाले मामले में दी गई इतरोक्ति की परिधि की सीमा पर विचार किया जाना है । अपीलार्थियों ने इस बात पर जोर दिया है कि इस विनिश्चय में इस बाबत किया गया निर्वचन कि क्या 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम के अंतर्गत किसी न्यायालय द्वारा विचारार्थ प्राप्त किए गए मामले में क्षेत्रीय अधिकारिता आत्यंतिक होती है और उसको चुनौती नहीं दी जा सकती, प्रत्यर्थियों का प्रकथन है कि इंडस मोबाइल वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का विनिश्चयानुपात कानून के विपरीत है और उस संवैधानिक न्यायपीठ, जिसके विनिश्चय का अवलंब लेते हुए प्रश्नगत नियम प्रतिपादित किया गया, द्वारा दिए गए विनिश्चय के भी विपरीत हैं । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह संभव है कि किसी करार को शासित करने वाले फोरम चयन खंड और करार के किसी पक्ष द्वारा फोरम की रुचि को प्रभावित करने वाले खंड के होने के बावजूद कोई भी पक्ष उस न्यायालय की शरण में जा सकता है जिसको करार द्वारा नामित न किया गया हो । किसी सुसंगत पक्ष द्वारा की गई ऐसी कोई कार्रवाई केवल दो परिस्थितियों में घटित हो सकती है : जब संविदा के अन्य पक्ष न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में कोई आक्षेप नहीं करते ; या जब फोरम चयन खंड प्रवर्तित किए जाने के योग्य न हो चूंकि न्यायालय की पसंद को 1996 की अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) सपठित संहिता की धारा 16 से 20 या लेटर्स पेटेंट के सुसंगत उपबंधों, जैसा भी मामला हो, के निबंधनों के अनुसार अन्यथा रूप से भी अधिकारिता के साथ नहीं जोड़ा गया है । तथापि, यदि किसी करार, जो फोरम चयन खंड द्वारा शासित है, के किसी पक्ष का यह विचार है कि फोरम चयन खंड प्रवर्तित किए जाने योग्य नहीं हैं या प्रवर्तित किए जाने के प्रयोजनार्थ कार्यान्वित किए जाने योग्य नहीं हैं क्योंकि नामित न्यायालय को विधि के अधीन यह प्राधिकार नहीं है कि वह कोई कार्रवाई प्राप्त कर सके, याचिका या वाद-पत्र में यह बात स्पष्ट रूप से कही जानी चाहिए और इस बाबत

कारण भी उपदर्शित किए जाने चाहिए कि नामित न्यायालय करार से उद्भूत होने वाली किसी कार्रवाई पर विचार करने के लिए विधि के अंतर्गत सक्षम होगा । 1996 के अधिनियम की धारा 9 के अधीन फाइल की गई याचिका जो 2018 की ए. पी. ओ. सं. 37 है, में याची – वित्तीय कंपनी द्वारा फोरम चयन खंड के बारे में न्यायालय को सूचित करने या उसकी सक्षमता के बारे में प्रकथन करने का कोई प्रयास नहीं किया गया । ऐसी परिस्थिति में, विशेष रूप से जब यह बात स्पष्ट है कि पक्षों के मध्य फाइल किए गए विवाद की विषयवस्तु पर आधारित कोई वाद नामित न्यायालय में फाइल किया गया है, न्यायालय फोरम चयन खंड की उपेक्षा में कोई कार्रवाई प्राप्त होने पर किसी भी कार्यवाही को करने में अग्रसर होने से विरत रहेगा और याचिका को नामित न्यायालय में फाइल किए जाने के लिए वापस कर देगा, परंतु यह तब जबकि इस संबंध में कोई आक्षेप किया गया हो । पूर्वोक्त कारणोंवश 2018 की ए. पी. ओ. सं. 26, 27, 39 और 42 में पारित आक्षेपित आदेशों में मध्यक्षेप नहीं किया जाता है, यद्यपि ये निर्णय पूर्णतया भिन्न आधारों, जिनको इनमें दर्शित किया गया है, पर पारित किए गए हैं । 2018 की ए. पी. ओ. सं. 37 में पारित किया गया आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है और 1996 के अधिनियम की धारा 9 के अधीन फाइल की गई संबद्ध याचिका, जो 2017 की ए. पी. ओ. सं. 35 है, लेटर्स पेटेंट के खंड 12 के अधीन प्रदान की गई आज्ञा को वापस लेते हुए अस्वीकृत किया जाता है और वित्तीय कंपनी को यह स्वतंत्रता प्रदान की जाती है कि वे इस याचिका को समुचित न्यायालय में प्रस्तुत करे । तद्नुसार, 2018 की ए. पी. ओ. सं. 26, 27, 39 और 42 खारिज की जाती हैं और 2018 की ए. पी. ओ. सं. 37 मंजूर की जाती है और 2018 की ए. पी. ओ. सं. 38 पर कोई आदेश पारित नहीं किया जाता, चूंकि इस मामले से संबंधित विवाद का निपटारा हो चुका है । (पैरा 84, 85 और 86)

अनुसृत निर्णय

		पैरा
[2018]	(2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन दिल्ली 9338 : **एन्ट्रिक्स कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **देवास मल्टीमीडिया प्राइवेट लिमिटेड** ;	48

[2018]	(2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन दिल्ली 9566 : **कात्यायनी पेपर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **आपूर्ति और निस्तारण महानिदेशक** ;	33
[2018]	(2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन दिल्ली 9178 : **ग्लोबल क्रेडिट कैपिटल लिमिटेड** बनाम **क्रिष रिएलिटी निर्माण प्राइवेट लिमिटेड** ;	26
[2018]	(2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन दिल्ली 8227 = ए. आई. आर. ऑन लाइन 2018 दिल्ली 60 : **राईट्स लिमिटेड** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली सरकार** ;	24
[2018]	(2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन दिल्ली 7009 : **एन. जे. कंस्ट्रक्शन** बनाम **आयुरसुन्दर हेल्थ केयर प्राइवेट लिमिटेड** ;	24
[2018]	(2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन केरल 2538 : **के. शशीधरण** बनाम **सुन्दरम फाइनेंस लिमिटेड** ;	33
[2018]	(2018) 4 एस. सी. सी. 743 : **जयंत वर्मा** बनाम **भारत संघ** ;	47
[2018]	2018 (6) स्केल. 504 : **भारत संघ** बनाम **हार्डी एक्सप्लोरेशन एंड प्रोडक्शन (इंडिया) इनकारपोरेटेड** ;	38
[2018]	(2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन गुजरात 316 : **यूनिक ऑप्टिकल फाइबर एंड टेलीकॉम सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **टेलीकॉम कम्युनिकेशन कंसल्टेंसी इंडियन लिमिटेड** ;	25
[2017]	(2017) 7 एस. सी. सी. 678 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 2105 : **इंडस मोबाइल डिस्ट्रिब्यूशन प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **डाटाविंड इनोवेशन्स प्राइवेट लिमिटेड** ;	1,39,40,41, 42,43,48,50,51, 52,59,60,64,65,66,69

[2017] (2017) 13 एस. सी. सी. 115 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 1826 :
डेंटल काउंसिल आफ इंडिया बनाम **डा. हेडगेवार स्मृति रुग्ण सेवा मंडल, हिंगोली** ; 35

[2017] (2017) एस. सी. सी. ऑन लाइन दिल्ली 10361 :
दिपेन्द्र कुमार बनाम **स्ट्रेटेजिक आउटसोरसिंग सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड** ; 26

[2017] मनु/यू.सी./0138/2017 = ए. आई. आर. 2017 (एन.ओ.सी.) 1046 (उत्तराखंड) :
नगर पालिका परिषद् बनाम **रमेश कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड** ; 30

[2017] मनु./डब्ल्यू.बी./0987/2017 :
मिकॉन सर्विसेज बनाम **प्रीडोमिनेंट इंजीनियर कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड** ; 32

[2017] (2017) 6 महाराष्ट्र ला जर्नल 753 :
म्युनिसिपल कारपोरेशन फॉर सिटी ऑफ कल्याण एंड डोम्बीवली बनाम **रुद्राणी इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड** ; 28

[2017] (2017) 125 ए. एल. आर. 582 :
सुरिष्ठ तिवारी बनाम **पुरुषोत्तम कुमार चौबे** ; 29

[2017] (2017) 4 सी. जी. एल. जे. 570 :
बिजय कुमार अग्रवाल बनाम **टाटा मोटर्स फाइनेंस लिमिटेड** ; 29

[2016] (2016) 11 एस. सी. सी. 508 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 2438 :
एटजन बल्क ए./एस. बनाम **आशापुरा माइनकैप लिमिटेड** ; 66

[2015] (2015) 9 एस. सी. सी. 172 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 1504 :
हार्मनी इनोवेशन शिपिंग लिमिटेड बनाम **गुप्ता कोल इंडिया लिमिटेड** ; 66

[2015]	ए. आई. आर. 2015 कलकत्ता 112 : **प्रभात पैन** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	34
[2014]	(2014) 7 एस. सी. सी. 603 = ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 3218 : **रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड** बनाम **यूनियन ऑफ इंडिया** ;	66
[2014]	(2014) 5 एस. सी. सी. 1 = ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 3152 : **इनरकॉन (इंडिया लिमिटेड)** बनाम **इनकरकॉन जी.एम.बी.एच.** ;	20,64
[2012]	(2012) 9 एस. सी. सी. 552 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. (सप्ली.) 444 : **भारत एल्युमीनियम कंपनी लिमिटेड** बनाम **कैसर एल्युमीनियम टेक्निकल सर्विसेज इनकारपोरेटेड** ;	20,39,41,42, 61,62,63,68,69
[2012]	ए. आई. आर. 2012 कलकत्ता 92 : **कोल इंडिया लिमिटेड** बनाम **कैनेडियन कॉमर्सिल कारपोरेशन** ;	61
[2009]	(2009) 3 एस. सी. सी. 107 = 2009 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 607 : **राजस्थान एस. ई. बी.** बनाम **यूनिवर्सल पेट्रोकेमिकल्स** ;	71
[2005]	(2005) 7 एस. सी. सी. 791 : **हर्षद चीमनलाल मोदी** बनाम **डी. एल. एफ. यूनिवर्सल लिमिटेड** ;	73
[2004]	(2004) 4 एस. सी. सी. 671 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 2432 : **हानिलएरा टेक्सटाइल्स लिमिटेड** बनाम **पुरोमेटिक्स फिल्टर्स (प्रा.) लिमिटेड** ;	70

[2001]	(2001) 4 महाराष्ट्र ला जर्नल 2011 = (2001) ए. आई. एच. सी. 3329 (बॉम्बे) : **अरविन्द कन्हैया लाल पसीने** बनाम **टाटा फाइनेंस लिमिटेड** ;	31
[1989]	(1989) 1 एस. सी. सी. 101 : **दिल्ली नगर निगम** बनाम **गुरनाम कौर** ;	46,69
[1979]	(1979) 3 एस. सी. सी. 745 = ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1384 : **दलबीर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	45
[1971]	(1971) 1 एस. सी. सी. 286 = ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 740 : **हकम सिंह** बनाम **गैमन (इंडिया) लिमिटेड** ;	53,57,60,70
[1914]	(1914) 3 के. बी. 458 : **वैलाजक्वैज लिमिटेड** बनाम **कमिश्नर्स आफ इनलैंड रेवेन्यू** ;	36
[1901]	(1901) ए. सी. 495 : **क्विन** बनाम **लीथेम** ।	37

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 26.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन ।

याची की ओर से	सर्वश्री प्रियांकर साहा, (सुश्री) संजना बसु, तपन मुखर्जी और लालरतन मंडल
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री स्वतरूप बनर्जी, पीजुस बिश्वास, शिवानंद भट्टाचार्या, अभिषेख भट्टाचार्या, विप्लब मजुमदार, परितोश सिन्हा, सौभिक चौधरी और (सुश्री) ओइसवर्या बोस

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति संजीव बनर्जी ने दिया ।

न्या. बनर्जी – इस मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए एक नवीनतम विनिश्चय में दी गई इतरोक्ति की परिधि की सीमा पर विचार किया जाना है । अपीलार्थियों ने इस बात पर जोर दिया है कि इस विनिश्चय में इस बाबत किया गया निर्वचन कि क्या 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम के अंतर्गत किसी न्यायालय द्वारा विचारार्थ प्राप्त किए गए मामले में क्षेत्रीय अधिकारिता आत्यंतिक होती है और उसको चुनौती नहीं दी जा सकती ; प्रत्यर्थियों का प्रकथन है कि **इंडस मोबाइल डिस्ट्रीब्यूशन प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **डाटाविंड इनोवेशन्स प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का विनिश्चयानुपात कानून के विपरीत है और उस संवैधानिक न्यायपीठ, जिसके विनिश्चय का अवलंब लेते हुए प्रश्नगत नियम प्रतिपादित किया गया, द्वारा दिए गए विनिश्चय के भी विपरीत हैं ।

2. ये अपीलें माध्यस्थम् न्यायालय द्वारा तारीख 15 दिसंबर, 2017 को पारित एक ही निर्णय और आदेश, जिसके द्वारा **इंडस मोबाइल डिस्ट्रीब्यूशन प्राइवेट लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित प्रतिपादना को अनुपयोज्य अभिनिर्धारित किया गया, से उद्भूत होती हैं ।

3. इस मामले में उपरोक्त अधिनियम की धारा 2(1)(ङ) के निर्वचन का मामला भी अंतर्वलित है और यह मामला भी अंतर्वलित है कि इस उपबंध पर **इंडस मोबाइल डिस्ट्रीब्यूशन प्राइवेट लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में किस प्रकार विचार किया गया है । उक्त अधिनियम की धारा 2(1)(ङ) में 2015 में संशोधन किया गया था और 2015 के संशोधन के पूर्व और पश्चात् यह धारा तात्विक रूप से समान रही है :–

[2015 के संशोधन के पूर्व]

"2. **परिभाषाएं** – (1) इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,–

(क) से (घ) ....

[1] (2017) 7 एस. सी. सी. 678 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 2105.

(ङ) "न्यायालय" से किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अतर्गत अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भी है, जो माध्यस्थम् की विषयवस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषयवस्तु होते तो, विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता, किंतु ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघुवाद न्यायालय इसके अंतर्गत नहीं आता है ।"

[2015 के संशोधन के पश्चात्]

"2. **परिभाषाएं** – (1) इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,–

(क) से (घ) ....

(ङ) 'न्यायालय' से आश्रय है –

(i) अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के अलावा किसी माध्यस्थम् के मामले में किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अतर्गत अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भी है, जो माध्यस्थम् की विषयवस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषयवस्तु होते तो, विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता, किंतु ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघुवाद न्यायालय इसके अंतर्गत नहीं आता है ।

(ii) अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के मामले में अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भी है, जो माध्यस्थम् की विषयवस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषयवस्तु होते और अन्य मामलों में उस उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालयों की डिक्रियों से अपीलें सुनने की अधिकारिता रखने वाला उच्च न्यायालय ।"

4. उक्त अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) [जो 2015 के संशोधन

पूर्व की धारा (2)(1)(ङ) की समविषयक हैं] उस न्यायालय या उन न्यायालयों को उपदर्शित करती है, जिनके समक्ष माध्यस्थम् के किसी मामले से संबंधित, अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के सिवाय, उक्त अधिनियम के भाग-1 के अंतर्गत कोई मामला प्रस्तुत किया जा सकता है । माध्यस्थम् के किसी भी मामले में, अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के सिवाय, समस्त याचिकाएं और आवेदन उक्त अधिनियम के भाग-1 के अंतर्गत अधिनियम की धारा 8 और 11 के अधीन न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की समस्त याचिकाएं और आवेदन कतिपय कारणोंवश प्रस्तुत किए जा सकते हैं, सिवाय कतिपय कारणों के और उनको केवल उसी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है कि धारा 2(1)(ङ)(i) के अधीन आने वाले न्यायालयी वर्णन के अनुरूप उनके विचारणार्थ प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ सक्षम हों । धारा 2(1)(ङ)(i) का सत्व यह है कि यदि पक्षों में मध्य विवाद किसी माध्यस्थम् निदेश के बजाय सिविल वाद की भांति वादपत्र के रूप में फाइल किया जाता है तो न्यायालय या न्यायालयों, जो ऐसे सिविल वाद पर विचार करने के लिए प्राधिकृत हैं, भी न्यायालय या न्यायालयों की श्रेणी में आएंगे और अधिनियम के भाग-1 के अधीन याचिका या आवेदन विचारार्थ प्राप्त करने के लिए सशक्त होंगे, सिवाय अधिनियम की धारा 8 और 11 द्वारा आच्छादित मामलों के । (अधिनियम की धारा 8 के अधीन आवेदन, जिसके अंतर्गत कोई ऐसा विवाद उद्भूत हो गया है, जो माध्यस्थम् करार द्वारा आच्छादित है, न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है ; और अधिनियम की धारा 11 के अधीन मुख्य न्यायमूर्ति या उनके नामनिर्देशिती से अनुरोध किया जाता है ।) अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) के अधीन एक अन्य अर्हता अनुध्यात है जो यह है कि न्यायालय जिसके समक्ष अधिनियम के भाग-1 के अधीन कोई मामला प्रस्तुत किया जाता है, के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी जिला या लघुवाद न्यायालय की मूल अधिकारिता के मुख्य सिविल न्यायालय से निम्नतर सिविल न्यायालय हो, मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाले किसी उच्च न्यायालय को भी जिले की मूल अधिकारिता के प्रमुख सिविल न्यायालय की परिधि के अंतर्गत सम्मिलित किया गया है ।

5. यद्यपि, अधिनियम के भाग-1 में समाविष्ट परिभाषाओं से संबंधित उपबंध अधिनियम के भाग 2 पर भी लागू होते हैं, फिर भी इस मामले में चर्चा अधिनियम में भाग-1 तक सीमित है, चूंकि ये सभी मामले घरेलू माध्यस्थम् से संबंधित हैं ।

6. अभिव्यक्ति 'माध्यस्थम् की विषयवस्तु सृजित करने वाले प्रश्नों को निर्णीत करने की अधिकारिता रखने वाले, यदि वे प्रश्न वाद की विषयवस्तु रहे हैं', का प्रयोग किए जाने के प्रयोजनार्थ अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) न्यायालय या न्यायालयों से यह अपेक्षा करती है कि वे उन आधारों की पहचान करें, जिन पर एक ही विषयवस्तु (जो धारा 8 और 11 द्वारा आच्छादित हो सकती है और आच्छादित नहीं भी हो सकती है) को अंतर्वलित करने वाले सिविल वाद को प्रस्तुत किया जा सकता है । अतः, इस प्रकार की परिभाषा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 15 से 20 के अधीन वाद फाइल किए जाने के स्थान और लेटर्स पेटेंट के सुसंगत उपबंधों, यदि न्यायालय साधारण आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय है, की ओर संकेत करती हैं । इस सावधानी का पालन सदैव किया जाना चाहिए ; किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता के प्रधान सिविल न्यायालय से निम्नतर किसी न्यायालय या लघुवाद न्यायालय को इस अधिनियम के अधीन किसी मामले को प्राप्त करने का प्राधिकार नहीं है ।

7. यह संभव है कि अनेक न्यायालयों को किसी सिविल वाद को प्राप्त करने की क्षेत्रीय और वित्तीय अधिकारिता प्राप्त हो सकती है । अतः अनेक न्यायालयों को उक्त अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) के निबंधनों के अनुसार एक ही माध्यस्थम् करार के संबंध में भाग-1 के अधीन याचिका या आवेदन प्राप्त करने का प्राधिकार भी प्राप्त हो सकता है । तथापि, यदि कोई न्यायालय एक बार किसी याचिका या आवेदन को उक्त अधिनियम के भाग-1 के अधीन प्राप्त कर लेता है, तो एक ही माध्यस्थम् करार से संबंधित अन्य संभव न्यायालयों की अधिकारिता अधिनियम की धारा 42 को दृष्टि में रखते हुए समाप्त हो जाती है । पुनः, अधिनियम की धारा 42 का कार्यक्षेत्र कतिपय कारणोंवश अधिनियम की धारा 8 या धारा 11 के परिणामस्वरूप विस्तारित नहीं होता ।

8. ऐसे अनेक आधार हैं, जिनका अवलंब लेते हुए सिविल न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लिया जा सकता है । यदि कोई वाद अचल संपत्ति से संबंधित है, जैसे कि कोई वाद भूमि के बाबत फाइल किया जाता है, जैसीकि अभिव्यक्ति विधिक क्षेत्र में प्रचलित होती है, तो वह वाद उस न्यायालय में संस्थित किया जाना चाहिए जिसकी स्थानीय सीमाओं के भीतर वह संपत्ति या उसका कोई भाग स्थित है । जहां कोई वाद किसी अचल संपत्ति के संबंध में प्रतिकर से संबंधित है, तो उस वाद पर उस सिविल न्यायालय में विचार किया जाएगा, जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर कोई विधिविरुद्ध कार्य हुआ या वादी के विकल्प पर उस न्यायालय में चलेगा जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर प्रतिवादी स्वैच्छिक रूप से निवास करता है या कारबार करता है या व्यक्तिगत रूप से किसी लाभ के लिए कार्य करता है । वादी को सामान्य आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय के अलावा किसी सिविल न्यायालय में संस्थित अन्य वादों के संबंध में उस वाद को संस्थित करने का विकल्प उपलब्ध होता है, जहां प्रतिवादी या प्रत्येक प्रतिवादी स्वैच्छिक रूप से निवास करता है या कारबार करता है या वाद आरंभ किए जाने के समय व्यक्तिगत रूप से किसी लाभ के लिए कार्य करता है ; या, न्यायालय की आज्ञानुसार या अन्य प्रतिवादियों के पश्चात्वर्ती ज्ञान के आधार पर किसी ऐसे न्यायालय, जिसकी अधिकारिता के भीतर प्रतिवादी स्वैच्छिक रूप से निवास करता है या कारबार करता है या वाद आरंभ किए जाने के समय व्यक्तिगत रूप से लाभ के लिए कार्य करता है ; या, जहां संपूर्ण रूप से या भागत: वादकरण उद्भूत होता है ।

9. सामान्य आरंभिक सिविल अधिकारिता वाले इस न्यायालय में संस्थित किए गए किसी वाद में लेटर्स पेटेंट का खंड 12 सुसंगत उपबंध है । कोई वाद जिसको भूमि के लिए फाइल किया गया वाद माना जाता है, केवल उसी न्यायालय में फाइल किया जा सकता है जिसकी क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर वह भूमि या भूमि का कोई भाग स्थित है । इस न्यायालय को किसी ऐसे वाद को भी प्राप्त करने का प्राधिकार है जिसका प्रतिवादी या अनेक प्रतिवादियों में से कोई प्रतिवादी न्यायालय की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर स्वैच्छिक रूप से निवास करता है या

कारबार चलाता है या व्यक्तिगत रूप से लाभ के लिए कार्य करता है, उन लोगों के संबंध में जो अधिकारिता के भीतर स्वैच्छिक रूप से निवास नहीं करते या कारबार नहीं करते या व्यक्तिगत लाभ के लिए कार्य नहीं करते, लेटर्स पेटेंट के खंड 12 के अधीन अभिप्राप्त अनुज्ञा के अधीन रहते हुए कार्य करता है । इसके अतिरिक्त किसी सिविल वाद को ऐसे न्यायालय में भी संस्थित किया जा सकता जहां प्रतिवादी या अनेक प्रतिवादी स्वैच्छिक रूप से निवास नहीं करते या कारबार नहीं करते या व्यक्तिगत रूप से लाभ के लिए कार्य नहीं करते हैं, यदि संपूर्ण वादकरण इस न्यायालय की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर उद्भूत हुआ है । इसके अतिरिक्त यह न्यायालय किसी ऐसे सिविल वाद को भी विचारार्थ प्राप्त कर सकता है जो इस बात के बावजूद कि अनेक प्रतिवादी स्वैच्छिक रूप से निवास करते हैं या कारबार करते हैं या लाभ के लिए व्यक्तिगत रूप से कार्य करते हैं, यदि वादकरण का कोई एक भाग, जैसाकि अभिवचन वादपत्र में किया गया हो, इस न्यायालय की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर उद्भूत हुआ हो और वाद के प्रारंभ पर ही अनुज्ञा अभिप्राप्त कर ली गई हो ।

10. निश्चित रूप से उपरोक्त सभी विचार-विमर्श क्षेत्रीय अधिकारिता, जो वाद के वित्तीय मूल्यांकन के अध्यधीन है, से संबंधित है । तथापि, किसी माध्यस्थम् मामले में इस प्रकार का विचार-विमर्श असुसंगत है चूंकि अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) अधिकथित करती है कि मामले को केवल किसी जिले के प्रधान सिविल न्यायालय के समक्ष भी फाइल किया जाए ।

11. अब प्रश्न यह उद्भूत होता है कि कौन सा न्यायालय पक्षों के मध्य किसी पूर्व करार के अध्यधीन रहते हुए किसी वाद को विचारार्थ प्राप्त करने का हकदार होगा । वह करार, जिसमें फोरम चयन खंड समाविष्ट होता है, को हमारे न्यायशास्त्र में मान्यता प्राप्त है और यह करार इस एक मात्र शर्त के अध्यधीन है कि केवल वह न्यायालय, जिसे किसी वाद को प्राप्त करने की अधिकारिता प्राप्त है, पक्षों द्वारा स्वैच्छिक फोरम के रूप में सुना जा सकता है । अन्य शब्दों में पक्षों को यह स्वतंत्रता नहीं है कि वे करार द्वारा किसी ऐसे न्यायालय को अधिकारिता प्रदान कर सके, जिसको उस सिविल कार्रवाई को प्राप्त करने

की अधिकारिता प्राप्त नहीं है ।

12. उपरोक्त प्रारंभिक चर्चा **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दी गई इतरोक्ति का मूल्यांकन किए जाने के प्रयोजनार्थ आवश्यक है ।

13. इस मामले में अंतर्वलित छह मामलों में से चार मामलों में समान खंड हैं – या, किसी भी दर पर, समान विधिक अर्थान्वयन के खंड – माध्यस्थम् और माध्यस्थम् निदेश के स्थान, दोनों के संबंध में । ये मामले हैं 2018 का ए. पी. ओ. 26, 2018 का ए. पी. ओ. 27, 2018 का ए. पी. ओ. 39 और 2018 का ए. पी. ओ. 42 । 2018 के ए. पी. ओ. 37 और 2018 के ए. पी. ओ. 38, दो मामलों में वे खंड हैं जो ऐच्छिक न्यायालय और माध्यस्थम् निदेश के स्थान की पहचान करते हैं । यह स्पष्ट है कि इन मामलों में अंतर्वलित सभी करारों में माध्यस्थम् खंड समाविष्ट है । चारों मामलों में माध्यस्थम् निदेश के लिए स्थान को चुने और के प्रयोजनार्थ आशयित खंड सुसंगत करारों के अनुच्छेद 22 के भाग के रूप में समाविष्ट है :–

"22. विधि, अधिकारिता और माध्यस्थम् –

(क) इस करार से उद्भूत होने वाले सभी विवाद, मतभेद और/या दावे, इसके प्रभाव में बने रहने के दौरान या उसके पश्चात्, 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम या इस अधिनियम के किसी कानूनी संशोधन के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम् द्वारा निपटाए जाएंगे और उधारदाता के प्रबंध निदेशक द्वारा नामित किसी मध्यस्थ के एकल माध्यस्थम् को निर्दिष्ट किए जाएंगे । ऐसे किसी मध्यस्थ द्वारा दिया गया पंचाट अंतिम होगा और इस करार के ऋणी पर बाध्यकारी होगा ।

(ख) माध्यस्थम् कार्यवाहियों का स्थान चेन्नई होगा ।

(ग) ऊपर वर्णित प्रक्रिया द्वारा नियुक्त मध्यस्थ ऋणी द्वारा आडमान आस्तियों या उसकी ओर से प्रस्तुत की गई किसी अन्य प्रतिभूति के संबंध में भी पंचाट पारित करने का अधिकारी होगा ।"

फोरम का चयन (या न्यायालय की पसंद) खंड और माध्यस्थम् निदेश के लिए चुना गया स्थान अन्य दोनों मामलों में निष्पादित करार के खंड 23 और 24 में निम्नलिखित है :–

"23. माध्यस्थम् –

इस ऋण करार से उद्भूत होने वाले सभी विवाद, मतभेद और/या दावे या उसके अर्थान्वयन, अर्थ या प्रभाव या करार के पक्षों के अधिकारों और दायित्वों को माध्यस्थम्, जो 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम या उसके किसी कानूनी संशोधन के अनुसार मुंबई में आयोजित होगा, द्वारा निपटाए जाएंगे और ऋणदाता द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति को निर्दिष्ट किए जाएंगे । इस प्रकार मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने, इनकार किए जाने, उपेक्षा किए जाने, उसके अयोग्य हो जाने या असमर्थ होने की स्थिति में ऋणदाता किसी नए मध्यस्थ की नियुक्ति कर सकेगा । मध्यस्थ का पंचाट अंतिम होगा और समस्त संबद्ध पक्षों पर बाध्यकारी होगा ।"

24. अधिकारिता –

उपरोक्त खंड 23 के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए इस करार से उद्भूत मामलों के संबंध में कोई वाद, याचिका, निदेश या अन्य प्रस्तुतीकरण, जिसको इस करार से उद्भूत मामलों के संबंध में फाइल किए जाने की अनुज्ञा बिना किसी परिसीमा के 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम के मतावलंबन में दी गई है या फाइल किए जाने की अपेक्षा की गई है, 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 11 के अधीन किसी मध्यस्थ या मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए याचिका मुंबई के सक्षम न्यायालयों में ही संस्थित की जाएगी ।"

14. इस कानून का एकमात्र अन्य निदेश, जिसको अधिनियम के आरंभ में ही स्पष्ट किए जाने की आवश्यकता है, अधिनियम की धारा 20 है जो निम्नलिखित उपबंधित करती है :–

"20. माध्यस्थम् का स्थान – (1) पक्षकार, माध्यस्थम् के स्थान के लिए करार करने के लिए स्वतंत्र है ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी करार के न होने पर माध्यस्थम् के स्थान पर अवधारण, मामले की परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए, जिनके अंतर्गत पक्षकार की सुविधा भी है, माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा किया जाएगा ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, माध्यस्थम् अधिकरण, जब तक कि पक्षकार द्वारा अन्यथा करार नहीं किया गया हो, किसी ऐसे स्थान पर, जो वह अपने सदस्यों के बीच परामर्श के लिए, साक्षियों, विशेषज्ञों या पक्षकारों को सुनने के लिए या दस्तावेजों, माल या अन्य संपत्ति के निरीक्षण के लिए समुचित समझता है, बैठक कर सकेगा ।"

15. अब यह उपयुक्त समय है कि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय पर विचार किया जाए और उस मामले में अपनी मतभिन्नता को अभिलिखित किया जाए, जैसाकि प्रत्यर्थी फाइनेंस कंपनी द्वारा किया गया है । चूंकि, इस मामले में अंतर्वलित विवाद्यक **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई इतरोक्ति पर आधारित है और इस पहलू पर पहले भी अनेक निर्णय पारित किए जा चुके हैं, जैसेकि पक्षों द्वारा उद्धृत **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाला मामला, ऐसे किसी भी मामले पर चर्चा साधारण अनुक्रम में उद्धृत निर्णयज विधि की अपेक्षा अधिक विस्तारपूर्वक की जाएगी ।

16. **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रथम प्रत्यर्थी का रजिस्ट्रीकृत कार्यालय अमृतसर में स्थित था और उसने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी को माल की आपूर्ति नई दिल्ली से चेन्नई में की थी । अपीलार्थी ने प्रथम प्रत्यर्थी से संपर्क किया और उसके साथ उसके फुटकर भागीदार के रूप में कारबार करने की इच्छा व्यक्त की । इन परिस्थितियों में वर्ष 2014 में पक्षों के मध्य एक करार निष्पादित किया गया । इस करार में माध्यस्थम् खंड समाविष्ट था और फोरम की पसंद और माध्यस्थम् निदेश का स्थान को चुना जाना संविदा में निर्दिष्ट था । चूंकि

माध्यस्थम् निदेश के स्थान के बारे में करार में यह विनिर्दिष्ट था कि "ऐसा कोई भी माध्यस्थम् मुंबई में केवल अंग्रेजी भाषा में आयोजित होगा ।" फोरम चयन खंड में निम्नलिखित प्रावधान है :–

> "इस करार के संबंध में या इससे उद्भूत होने वाले किसी भी प्रकार के समस्त विवाद और मतभेद केवल मुंबई के न्यायालयों की अनन्य अधिकारिता के अधीन होंगे ।"

17. पक्षों के मध्य विवाद उत्पन्न हुए और प्रथम प्रत्यर्थी ने दावा किया कि एक बड़ी राशि संदेय थी जो अपीलार्थी से प्रथम प्रत्यर्थी को बकाया थी । प्रत्यर्थी द्वारा करार में समाविष्ट माध्यस्थम् खंड का अवलंब लिया गया और प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति कर दी गई । अपीलार्थी ने इस नियुक्ति का विरोध किया और प्रथम प्रत्यर्थी से अपेक्षा की कि वह मध्यस्थ नियुक्त किए जाने की सूचना वापस ले लें । तत्पश्चात् प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष दो याचिकाएं फाइल की गईं, पहली उक्त अधिनियम की धारा 9 के अधीन और दूसरी इसी अधिनियम की धारा 11 के अधीन । दोनों ही याचिकाओं का निस्तारण उच्चतम न्यायालय के समक्ष आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा कर दिया गया ।

18. जैसाकि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में उल्लिखित रिपोर्ट के पैरा 5 में अभिलिखित है, दिल्ली उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चूंकि वादकरण का कोई भी भाग मुंबई में उद्भूत नहीं हुआ, अत: फोरम चयन खंड लागू नहीं होता, चूंकि मुंबई के न्यायालयों को उक्त अधिनियम के अधीन किसी भी याचिका पर विचार करने की कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं है । दिल्ली उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि चूंकि उक्त न्यायालय की शरण पहले ली गई थी और उसको उक्त अधिनियम की धारा 9 के अधीन याचिका प्राप्त करने की अधिकारिता भी प्राप्त थी, यह न्यायालय गुणागुण पर अंतरिम अनुतोष प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ याचिका में आगे अग्रसर हो सकता था । अधिनियम की धारा 11 के अधीन अनुरोध का निस्तारण उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को एकल मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किए जाने के द्वारा कर दिया गया । इस निर्णय में यह भी अभिलिखित किया गया कि माध्यस्थम् का आयोजन

मुंबई में ही किया जाएगा ।

19. अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष दलील दी कि "यदि इस बात को स्वीकार भी कर लिया जाए कि वादकरण का कोई भी भाग मुंबई में उद्भूत नहीं हुआ फिर भी माध्यस्थम् का स्थान मुंबई होने के कारण मुंबई के न्यायालयों को इस मामले में समस्त कार्यवाहियों के प्रयोजनार्थ अनन्य अधिकारिता प्राप्त होगी ।" उच्चतम न्यायालय ने प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से दी गई इस विरोधी दलील का भी उल्लेख किया कि चूंकि वादकरण का कोई भी भाग मुंबई में उद्भूत नहीं हुआ, फिर भी यदि माध्यस्थम् निदेश का स्थान मुंबई था, "तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता चूंकि कम से कम न्यायालय को अधिकारिता प्रदान करने वाली 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा विहित अनेक परीक्षणों में से एक परीक्षण, जिसके द्वारा न्यायालय को अधिकारिता प्रदान की गई, का पालन तो अवश्य किया जाना चाहिए ।" तथापि, न्यायालय ने इस निर्णय में मामले के इस पहलू पर कोई विचार व्यक्त नहीं किया ।

20. उच्चतम न्यायालय ने **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में उल्लिखित रिपोर्ट के पैरा 9 में अधिनियम की 2015 की यह मताभिव्यक्ति संशोधनपूर्व धारा 2(1)(ङ) और धारा 20 को उद्धृत करते हुए की कि "न्यायिक स्थान की संकल्पना इंग्लैंड के न्यायालयों द्वारा विकसित की गई है और तत्पश्चात् हमारे न्यायशास्त्र में दृढ़तापूर्वक अंत:स्थापित की गई है" उच्चतम न्यायालय ने इस संदर्भ में **भारत एल्युमीनियम कंपनी** बनाम **कैसर एल्युमीनियम टेक्निकल सर्विसेज इनकारपोरेटेड**[1] वाले मामले में संसूचित संविधान न्यायपीठ के निर्णय का उल्लेख किया और भारत एल्युमीनियम कंपनी (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 96, 98 से 100 और 123 को उद्धृत किया । तत्पश्चात् न्यायालय ने **इनरकॉन (इंडिया लिमिटेड)** बनाम **इनकरकॉन जी. एम. बी. एच.**[2] वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा दिए गए एक अन्य निर्णय को भी निर्दिष्ट किया और सुसंगत रिपोर्ट के पैरा 134 जो

[1] (2012) 9 एस. सी. सी. 552 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. (सप्ली.) 444.

[2] (2014) 5 एस. सी. सी. 1 = ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 3152.

अंतरराष्ट्रीय माध्यस्थम् से संबंधित विधि पर विचार किए जाने से संबंधित लेखांश है, को उद्धृत किया । उच्चतम न्यायालय ने **भारत एल्युमीनियम कंपनी** और **इनरकॉन** वाले मामलों से उद्धृत लेखांशों के आधार पर जो निष्कर्ष निकाला वह रिपोर्ट के पैरा 13 में निम्नलिखित है :–

> "यह न्यायालय दोहराता है कि यदि एक बार माध्यस्थम् का स्थान निर्धारित कर दिया जाता है, तो यह उन न्यायालयों, जो माध्यस्थम् पर पर्यवेक्षणीय शक्तियों का प्रयोग करते हैं, के संबंध में अनन्य अधिकारिता खंड की प्रकृति में होगा ....।"

21. **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 15 और 16 में अंतरराष्ट्रीय माध्यस्थम् से संबंधित मामलों पर दिए गए उच्चतम न्यायालय के दो अन्य निर्णयों का भी उल्लेख विधि आयोग की एक रिपोर्ट, जो 1996 के अधिनियम के 2015 के संशोधन की पूर्वगामी है और विधि आयोग की उक्त रिपोर्ट में **भारत एल्युमीनियम कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के निदेश का उल्लेख किए जाने के पूर्व किया । रिपोर्ट के पैरा 18 में न्यायालय ने उल्लेख किया कि 2015 के संशोधन में विधि आयोग की सिफारिशों को सम्मिलित नहीं किया गया है, जैसाकि उद्धृत रिपोर्ट में उपदर्शित किया गया है कि "उन बातों को अभिव्यक्त रूप से सम्मिलित किया जाना आवश्यक पाया जाता है, जिनको उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने पहले ही अधिनियम के अर्थान्वयन के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है ।" विधिक विवाद्यक पर दिए गए निष्कर्ष **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दी गई रिपोर्ट के पैरा 19 और 20 (रिपोर्ट के पैरा 20 और 21) में दर्शित हैं ।

> "19. समस्त पूर्वोक्त उपबंधों की रूपरेखा से यह दर्शित होता है कि जैसे ही किसी स्थान को नामित किया जाता है, वह स्थान अनन्य अधिकारिता खंड के समान हो जाता है । वर्तमान मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि माध्यस्थम् का स्थान मुंबई है और खंड 19 इस बात को पुन: स्पष्ट करता है कि मुंबई न्यायालयों में ही अधिकारिता अनन्य रूप से निहित है । माध्यस्थम् की विधि के अंतर्गत, जैसेकि सिविल प्रक्रिया संहिता

न्यायालयों में फाइल किए जाने वाले वादों पर लागू होती है, 'स्थान' का निदेश एक ऐसी संकल्पना है जिसके द्वारा किसी तटस्थ स्थान को माध्यस्थम् खंड के पक्षकारों द्वारा चुना जा सकता है । यह संभव है कि संस्थापित भाव में उस तटस्थ स्थान को अधिकारिता प्राप्त न हो – अर्थात् उस तटस्थ स्थान पर वादकरण का कोई भी भाग उद्भूत न हुआ हो और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 16 से 21 का कोई भी उपबंध आकर्षित न होता हो । तथापि, माध्यस्थम् विधि के अनुसार जैसाकि ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है, जिस क्षण 'स्थान' का विनिर्धारण होता है, मुंबई के स्थान में पक्षों के मध्य करार से उद्भूत माध्यस्थम् कार्यवाहियों के विनियमन के प्रयोजनार्थ अनन्य अधिकारिता मुंबई के न्यायालयों में निहित हो जाएगी ।

20. यह सुस्थापित है कि जहां एक से अधिक न्यायालयों को अधिकारिता प्राप्त होती है, पक्षों को यह अधिकार है कि वे अन्य सभी न्यायालयों को अपवर्जित कर दें । निर्णयज विधि की सर्वांगीण विवेचना के लिए **स्वास्तिक गैसेज (प्राइवेट) लिमिटेड** बनाम **इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड,** [(2013) 9 एस. सी. सी. 32] वाले मामले को देखें । इसी मामले का अनुसरण **बी. ई. सिमोईज वॉन स्टारावर्ग नीडेनथाल** बनाम **छत्तीसगढ़ इन्वेस्टमेंट लिमिटेड,** [(2015) 12 एस. सी. सी. 225] वाले मामले में किया गया । उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि केवल मुंबई स्थित न्यायालयों को ही देश के अन्य सभी न्यायालयों के अपर्वजन में अधिकारिता प्राप्त है, चूंकि माध्यस्थम् का न्यायिक स्थान मुंबई है । यह मामला होने के कारण आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है । वह व्यादेश, जिसकी पुष्टि आक्षेपित निर्णय द्वारा की गई, इस निर्णय की घोषणा की तारीख से चार सप्ताह की अवधि तक लागू रहेगा, ताकि प्रत्यर्थी मुंबई न्यायालय में धारा 9 के अधीन आवश्यक कार्यवाही कर सकें । अपीलें तद्नुसार निस्तारित की जाती है ।"

22. अपीलार्थियों के अनुसार **इंडस मोबाईल** (उपरोक्त) वाले मामले को समुचित रूप से पढ़े जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उस मामले

का निर्णीतानुसरण (Ratio Decidendi) यह है कि यदि एक बार पक्षों के मध्य माध्यस्थम् निदेश के स्थान के बाबत सहमति हो जाती है, तो केवल उस स्थान के न्यायालय, जिसको नामित किया गया है, को 1996 के अधिनियम के भाग-1 द्वारा आच्छादित समस्त मामलों के संबंध में अधिकारिता प्राप्त होगी । अपीलार्थी यह निवेदन करते हैं कि विधि की दृष्टि में यही अपरिहार्य निष्कर्ष है, जैसाकि उच्चतम न्यायालय द्वारा **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 19 द्वारा घोषित किया गया है और विवाद्यक न तो अनिर्णीत विषय है और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधी विषय ।

23. तत्पश्चात् अपीलार्थियों ने भिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों को उद्धृत किया, जिनमें **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) में दी गई इतरोक्ति का अनुसरण किया गया है । अपीलार्थियों का सुझाव है कि चूंकि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में घोषित विधि को व्यापक रूप से लागू किया गया है, अतः उस मामले में स्थिरीकृत स्थिति में व्यावधान उत्पन्न नहीं किया जाना चाहिए । अपीलार्थियों ने न्यायिक औचित्य, अनुशासन और मर्यादा के सिद्धांत पर जोर दिया और निर्णीतानुसरण के सिद्धांत को भी निर्दिष्ट किया ।

24. अपीलार्थियों ने सर्वप्रथम दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **एन. जे. कंस्ट्रक्शन** बनाम **आयुरसुन्दर हेल्थ केयर प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में, संसूचित निर्णय को निर्दिष्ट किया । इस मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल न्यायपीठ ने संविदा में परिवर्ती फोरम चयन खंडों और माध्यस्थम् स्थान चयन खंडों का उल्लेख किया, किंतु **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय को यह अनुदेश दिए जाने के प्रयोजनार्थ निर्दिष्ट किया कि (फोरम चयन खंड द्वारा यह उपबंध किए जाने के बाद भी कि 'केवल गुवहाटी के न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त होगी .....)' 'चूंकि माध्यस्थम् का स्थान नई दिल्ली है, जो कि एक तटस्थ स्थान है, केवल उसी न्यायालय को निर्णीत करने की अधिकारिता होगी ....' । 1996 के अधिनियम की धारा 11 के अधीन की गई प्रार्थना का तद्नुसार निस्तारण कर दिया गया । अपीलार्थियों

---

[1] (2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन दिल्ली 7009.

द्वारा जिस अन्य मामले को उद्धृत किया गया, वह **राईट्स लिमिटेड** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली सरकार**[1] वाला मामला है, जिसमें दिल्ली उच्च न्यायालय की एक अन्य एकल न्यायपीठ ने उल्लेख किया कि सुसंगत संविदा में गोवा में माध्यस्थम् संचालित किए जाने के लिए उपबंधित किया गया है और **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई इतरोक्ति को यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ लागू किया गया कि "जहां पक्ष इस बाबत सहमत हैं कि माध्यस्थम् किसी तटस्थ स्थान पर संचालित किया जाएगा - अर्थात् जहां वादकरण का कोई भी भाग उद्भूत न हुआ हो, तो तटस्थ स्थान के संबंध में अधिकारिता रखने वाले न्यायालयों को 'माध्यस्थम् कार्यवाहियों को विनियमित किए जाने के प्रयोजनार्थ अनन्य अधिकारिता' होगी ।" इस निर्णय में आक्षेपित निर्णय और आदेश का भी उल्लेख किया गया और मताभिव्यक्ति की गई कि "यह न्यायालय आक्षेपित विचार के साथ सहमत होने में असमर्थ है" और आगे यह अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान कार्यवाहियों में आक्षेपित निर्णय और आदेश **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की प्राधिकारवान निर्णयज विधि के विपरीत है....।"

25. **यूनिक ऑप्टिकल फाइबर एंड टेलीकॉम सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **टेलीकॉम कम्युनिकेशन कंसल्टेंसी इंडियन लिमिटेड**[2] वाले मामले में पारित, जिसको अपीलार्थियों द्वारा अगले मामले के रूप में उद्धृत किया गया, में 1996 के अधिनियम की धारा 11 के अधीन की गई प्रार्थना को गुजरात उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा पदनामित न्यायालय द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया था । तथापि, उस मामले में करार में फोरम चयन खंड और माध्यस्थम् स्थान चयन खंड, दोनों समाविष्ट थे, जिनके द्वारा दिल्ली के न्यायालयों को अनन्य अधिकारिता प्राप्त थी और माध्यस्थम् कार्यवाही दिल्ली में आयोजित होनी थी ।

---

[1] (2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन दिल्ली 8227 = ए. आई. आर. ऑन लाइन 2018 दिल्ली 60.

[2] (2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन गुजरात 316.

26. अपीलार्थियों द्वारा निर्दिष्ट किए गए **ग्लोबल क्रेडिट कैपिटल लिमिटेड** बनाम **क्रिष रिएलिटी निर्माण प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले एक अन्य मामले में, माध्यस्थम् निदेश के लिए करार में निर्दिष्ट स्थान नई दिल्ली था, किंतु फोरम खंड में उपबंधित किया गया था कि गुड़गांव के न्यायालयों को "इस करार से संबद्ध समस्त मामलों में" अधिकारिता होगी । दिल्ली उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के नामनिर्देशिती ने अधिकारिता के संबंध में आक्षेप नामंजूर किए जाने के प्रयोजनार्थ **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लिया । **दिपेन्द्र कुमार** बनाम **स्ट्रेटेजिक आउटसोरसिंग सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड**[2] वाले एक अन्य मामले, जिसको अपीलार्थियों द्वारा उद्धृत किया गया में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 11 के अधीन फाइल किए गए प्रार्थनापत्र को मात्र इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि करार में माध्यस्थम् निदेश के लिए उपबंधित किया गया है, जो बैंगलुरू में आयोजित किया जाएगा । यह विनिश्चय भी **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णीतानुसरण पर आधारित था ।

27. अपीलार्थियों द्वारा **रहेजा डेवलपर्स लिमिटेड** बनाम **प्रोटो डेवलपर्स एंड टेक्नोलॉजीस लिमिटेड**[3] वाले मामले (2017 की मूल प्रकीर्ण याचिका सं. 8) में, दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल न्यायपीठ द्वारा तारीख 30 जनवरी, 2018 को पारित एक अन्य असंसूचित निर्णय को भी निर्दिष्ट किया गया । इस मामले में पक्षों के मध्य सुसंगत करार के खंड 19 में यह अनुध्यात किया गया था कि माध्यस्थम् का स्थान दिल्ली होगा और इस करार में यह भी उपबंधित किया गया था कि "दिल्ली स्थित न्यायालयों को अधिकारिता होगी ।" इस मामले में प्रत्यर्थियों द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 42 के आधार पर आक्षेप किया गया कि माध्यस्थम् अधिकरण पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा 11 के अधीन फाइल की गई प्रार्थनापत्र के आधार पर गठित किया गया है । दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के पैरा 9 में विद्वान् एकल न्यायपीठ ने **इंडस**

---

[1] (2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन दिल्ली 9178.

[2] (2017) एस. सी. सी. ऑन लाइन दिल्ली 10361.

[3] असंसूचित ।

मोबाइल (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पक्षों के मध्य करार में उपबंधित किया गया है कि माध्यस्थम् कार्यवाहियां दिल्ली में संचालित होंगी, इस आक्षेप को अस्वीकृत कर दिया ।

28. अपीलार्थियों द्वारा हमारे समक्ष जो अन्य निर्णयज विधि प्रस्तुत की गई, बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा **म्युनिसिपल कारपोरेशन फॉर सिटी ऑफ कल्याण एंड डोम्बीवली** बनाम **रुद्राणी इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड**[1] वाले मामले में तारीख 5 जुलाई, 2017 को एकल न्यायपीठ द्वारा दिया गया निर्णय है । इस मामले में माध्यस्थम् पंचाट को चुनौती देने वाली दोनों याचिकाओं की प्रतिरक्षा इस आधार पर की गई कि थाणे स्थित जिला न्यायालय, जो बम्बई उच्च न्यायालय की संवर्ती अधिकारिता के अंतर्गत आता है, अनन्य अधिकारिता वाला न्यायालय है। याचियों ने दलील दी कि चूंकि मध्यस्थ को बम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के नामनिर्देशिती द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 11 के अधीन नियुक्त किया गया था और "यह तथ्य कि माध्यस्थम् निदेश में बैठकें आयोजित की जा चुकी थीं और पंचाट मुंबई में पारित किया जा चुका था, अत: माध्यस्थम् का स्थान मुंबई निर्धारित हो गया ।" इस प्रयोजनार्थ **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया । चूंकि करार में माध्यस्थम् का स्थान अनुध्यात नहीं किया गया था, न्यायालय याचियों के साथ असहमत था और अभिनिर्धारित किया कि थाणे स्थित जिला न्यायालय को अधिनियम की धारा 42 सपठित धारा 2(1)(ङ) को दृष्टि में रखते हुए पंचाट पर निर्णायक रूप से अधिकारिता प्राप्त थी ।

29. तत्पश्चात् अपीलार्थियों द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक विनिश्चय का अवलंब लिया गया । **सुरिष्ठ तिवारी** बनाम **पुरुषोत्तम कुमार चौबे**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय में 1996 की अधिनियम की धारा 11 के अधीन फाइल किए गए प्रार्थनापत्र पर एकल न्यायपीठ द्वारा विचार किया गया था । सुसंगत करार के एक खंड में यह अनुध्यात किया गया था कि माध्यस्थम् कार्यवाहियां नई दिल्ली में

---

[1] (2017) 6 महाराष्ट्र ला जर्नल 753.

[2] (2017) 125 ए. एल. आर. 582.

संचालित होंगी । उक्त खंड का अवलंब लेते हुए और **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णीतानुसरण को लागू करते हुए 1996 की अधिनियम की धारा 11 के अधीन प्रस्तुत किए गए प्रार्थनापत्र को यह मताभिव्यक्ति करते हुए अस्वीकृत कर दिया गया कि "किसी माध्यस्थम् का स्थान अनन्य अधिकारिता खंड के सदृश्य होता है" और "धारा 11 के अधीन अनुतोष के लिए कोई दावा केवल उसी स्थान पर स्थिति न्यायालयों में फाइल किया जा सकता है जिसको माध्यस्थम् के स्थान के रूप में नामित किया गया हो ।" अपीलार्थियों द्वारा **बिजय कुमार अग्रवाल** बनाम **टाटा मोटर्स फाइनेंस लिमिटेड**[1] वाले मामले में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय की एकल न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया गया । सुसंगत करार के फोरम चयन खंड और माध्यस्थम् स्थान खंड, दोनों में मुंबई की पहचान चुने गए स्थान के रूप में की गई थी । सुसंगत खंड 2018 के ए. पी. ओ. सं. 37 और 38 में वर्तमान मामले में खंडों के समरूप हैं, ऐसा इसलिए है चूंकि यह वही वित्तीय कंपनी है जो छत्तीसगढ़ वाले मामले में अंतर्वलित थी । न्यायालय ने **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए निर्णय के आधार पर अभिनिर्धारित किया कि केवल मुंबई में स्थित समुचित न्यायालय माध्यस्थम् पंचाट को दी गई चुनौती, जो इस मामले की विषयवस्तु है, पर विचार कर सकता है ।

30. अपीलार्थियों द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल न्यायपीठ द्वारा पारित एक अन्य असंसूचित निर्णय को भी उद्धृत किया गया । **देवयानी इंटरनेशनल लिमिटेड** बनाम **सिद्धि बिनायक बिल्डर्स एंड डेवलपर्स**[2] वाले इस मामले में फाइल की गई 2017 की ओ.एम.पी. (i)(कॉम) में तारीख 27 सितंबर, 2017 को पारित निर्णय में अधिनियम की धारा 9 के अधीन फाइल की गई याचिका को माध्यस्थम् स्थान खंड, जो दिल्ली में माध्यस्थम् के आयोजित किए जाने के लिए उपबंधित करता है, के आधार पर गुणागुण पर निर्णीत किया गया था, यद्यपि इस मामले में फोरम चयन खंड द्वारा मुंबई स्थित न्यायालयों को करार से उद्भूत होने वाले मामले या वाद पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ

---

[1] (2017) 4 सी. जी. एल. जे. 570.

[2] असंसूचित ।

अनन्य अधिकारिता प्रदान की गई थी । इस मामले में भी **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रतिपादित सिद्वांत को यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ लागू किया गया कि यदि एक बार माध्यस्थम् के स्थान के रूप में दिल्ली की पहचान कर ली जाती है, तो दिल्ली स्थित न्यायालयों को माध्यस्थम् करार से संबंधित मामलों पर विचार करने की अनन्य अधिकारिता प्राप्त होगी । तत्पश्चात् अपीलार्थियों द्वारा **नगर पालिका परिषद्** बनाम **रमेश कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में उत्तराखंड उच्च न्यायालय की एकल न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय को हमारे समक्ष यह स्पष्ट किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत किया गया कि किस प्रकार से **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में निर्णीत स्थिति को पक्षों के मध्य करार, जिसके द्वारा देहरादून को सामान्य रूप से माध्यस्थम् के स्थान के रूप में उपबंधित किया गया था, के आधार पर लागू किया गया था । उस मामले में विवाद्यक यह था कि क्या पौढ़ी-गढ़वाल के जिला न्यायाधीश के न्यायालय को प्राप्त अधिकारिता करार में उल्लिखित खंड, जो उपबंधित करता है कि देहरादून सामान्य रूप से माध्यस्थम् का स्थान होगा, द्वारा समाप्त की जा सकती है । इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह खंड विवक्षित करता है कि 1996 के अधिनियम के अंतर्गत उन सभी मामलों, जिनको सुसंगत करार के संबंध में किसी न्यायालय के समक्ष लाया जाता है, केवल देहरादून स्थित जिला न्यायाधीश के न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त होगी ।

31. अपीलार्थियों द्वारा **अरविन्द कन्हैया लाल पशीने** बनाम **टाटा फाइनेंस लिमिटेड**[2] वाले मामले में, बम्बई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ की एकल न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया गया । इस मामले में फोरम चयन और माध्यस्थम् स्थान खंडों, दोनों के प्रयोजनार्थ मुंबई को स्थान के रूप में चुना गया था । यद्यपि, मामला 1940 के माध्यस्थम् अधिनियम के अंतर्गत था, अपीलार्थियों का कहना है कि उस मामले में उचित न्यायालय का निर्धारण अर्थात् माध्यस्थम् के

---

[1] मनु/यू.सी./0138/2017 = ए. आई. आर. 2017 (एन.ओ.सी.) 1046 (उत्तराखंड).

[2] (2001) 4 महाराष्ट्र ला जर्नल 2011 = (2001) ए. आई. एच. सी. 3329 (बॉम्बे).

लिए सहमत स्थान भी 1940 के अधिनियम के अंतर्गत **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त किए गए विचार के अनुसार ही था ।

32. अपीलार्थियों ने **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में जिस सिद्धांत को व्यापक रूप से मान्यता प्रदान की गई, के आधार पर **मिकॉन सर्विसेज** बनाम **प्रीडोमिनेंट इंजीनियर कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया । उस मामले में विवाद्यक यह था कि 1996 के अधिनियम के अंतर्गत पारित माध्यस्थम् पंचाट निष्पादित किए जाने के प्रयोजनार्थ कौन सा न्यायालय सक्षम होगा । न्यायालय ने **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया और अभिनिर्धारित किया कि चूंकि पक्ष अपने विवादों को पश्चिमी बंगाल राज्य सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद्, जो मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग के प्रयोजनार्थ इस न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत स्थित है, द्वारा माध्यस्थम् के माध्यम से निपटाए जाने के लिए सहमत थे, "हमको यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि इस उच्च न्यायालय का आरंभिक न्यायालय वह न्यायालय है जहां इस पंचाट को माध्यस्थम् अधिकरण के कार्य करने के स्थान के संदर्भ में प्रवर्तित किया जा सकता है, जो इस न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत स्थित आरंभिक न्यायालय की अधिकारिता के भीतर है ।"

33. अपीलार्थियों ने दो नवीनतम निर्णयों का अवलंब लिया है, पहला **कात्यायनी पेपर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **आपूर्ति और निस्तारण महानिदेशक**[2] वाला मामला और दूसरा **के. शशीधरण** बनाम **सुन्दरम फाइनेंस लिमिटेड**[3] वाला मामला है, जिनमें **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई इतरोक्ति को लागू किया गया और स्वीकार किया गया ।

34. तत्पश्चात् अपीलार्थियों ने **प्रभात पेन** बनाम **पश्चिमी बंगाल**

---

[1] मनु./डब्ल्यू.बी./0987/2017.

[2] (2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन दिल्ली 9566.

[3] (2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन केरल 2538.

राज्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब इस प्रतिपादना के समर्थन में लिया कि न्यायिक अनुशासन न्यायशास्त्र की शुद्धता के मुकाबले में अधिक महत्वपूर्ण होता है । इस निर्णय में अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया गया कि बाध्यकारी निर्णयज विधियों के आधार पर न्यायाधीशों द्वारा अधिकथित विधि भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वृहत्तर लोक नीति और विधि के संबंध में निश्चयात्मकता के आधार पर प्रतिष्ठापित की जाती है। यह न्यायिक अनुशासन का नियम है जो अन्य बातों को ध्यान में रखते हुए संपूर्ण न्याय प्रणाली के अस्तित्व में बने रहने के प्रयोजनार्थ है ।' इसके अतिरिक्त, इस निर्णय में जो मताभिव्यक्ति की गई, वह निम्नलिखित है :-

> "चूंकि निरंतरता और निश्चितता परिपक्व न्याय प्रणाली की आधारशीला हैं, जब इस देश की न्यायिक प्रणाली के क्रमानुक्रम में किसी उच्चतर फोरम द्वारा की गई विधिक उद्घोषणा को किसी निम्नतर फोरम के समक्ष उद्धृत किया जाता है, तो वह निम्नतर फोरम पर इस सावधानी को ध्यान में रखते हुए बाध्यकारी होती है कि उच्चतर फोरम द्वारा पारित निर्णय निर्णीतानुसरण नहीं है।"

प्रभात पेन (उपरोक्त) वाले मामले में दिए निर्णय में भी यह निर्देश दिया गया है कि किसी निर्णय में दिए गए विनिश्चयानुपात को कैसे विभेदित किया जाए और वह कौन सी विधि है जिसको उच्चतम न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 141 के प्रयोजनार्थ किसी निर्णय में घोषित किया जाता है :-

> "41. निर्णय किसी विधिक स्थिति के संबंध में निर्णयज विधि होता है और यह किसी भी मामले को अभिव्यक्त रूप से निर्णीत करता है और न कि किसी ऐसी रीति में जिस पर विचार किए जाने या जिसको निर्णीत किए जाने की उपधारणा की गई हो । **मिथिलेश गर्ग** (उपरोक्त) वाले मामले में दी गई इतरोक्ति इस न्यायालय पर बाधकारी है और उस निर्णय को उच्चतम न्यायालय

[1] ए. आई. आर. 2015 कलकत्ता 112.

द्वारा संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन घोषित विधि माना जाना चाहिए ; किंतु जो बाध्यकारी है, वह केवल उस निर्णय में दिया गया विनिश्चयानुपात होता है । किसी निर्णय के विनिश्चयानुपात को संपूर्ण निर्णय को पढ़े जाने के बाद ही प्रभेदित किया जा सकता है और इसको इस बात से ज्ञात किया जा सकता है कि निर्णय में किसी बात का उल्लेख किया गया है । निर्णय में किस बात का उल्लेख किया गया है, इसके लिए संपूर्ण मामले को पढ़ा जाना चाहिए, न कि अलग-अलग भागों को । किसी निर्णय को कानून की भांति नहीं पढ़ा जाना चाहिए और इसका विनश्चयानुपात ही इस बाबत इसकी तर्कणा होता है कि निष्कर्ष पर पहुंचे जाने के प्रयोजनार्थ विधि को मामले के तथ्यों पर किस प्रकार से लागू किया गया । उच्चतम न्यायालय के निर्णयों में समाविष्ट कथनों का बाध्यकारी प्रभाव नहीं होता, सिवाए उनमें समाविष्ट विधि के ।"

35. अपीलार्थियों ने दृढ़तापूर्वक दलील दी कि किसी भी परिपक्व न्यायिक प्रणाली का प्रमाण उसकी निरंतरता होता है और टॉम सी. क्लार्क द्वारा लिखित वर्ष 1965 (51ए.बी.ए.जे. 330) में प्रकाशित पुस्तक 'न्यायमूर्ति फ्रैंकफर्टर : ए हेरिटेज फार ऑल हू लव द लॉ' के एक लेखांश से निम्नलिखित उद्धरण को निर्दिष्ट किया जिनको **डेंटल काउंसिल आफ इंडिया** बनाम डा. **हेडगेवार स्मृति रुग्ण सेवा मंडल, हिंगोली**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय में उद्धृत किया गया है :–

"न्यायिक कर्तव्य के सर्वोच्च पालन के लिए किसी अधीनस्थ व्यक्ति के व्यक्तिगत प्रयास और विधि, जिसके हम सभी संरक्षक हैं - वे अवैयक्तिक धारणाएं जो किसी भी समाज को एक सभ्य समुदाय बनाते हैं, न कि व्यक्तिगत नियम के व्यथित, के संबंध में उसके निजी विचार आवश्यक होते हैं ।"

36. तत्पश्चात्, अपीलार्थियों ने **वेलाजक्वैज लिमिटेड** बनाम **कमिश्नर्स आफ इनलैंड रेवेन्यू**[2] वाले मामले में दिए गए इंग्लिश निर्णय के एक लेखांश को निर्दिष्ट किया :–

---

[1] (2017) 13 एस. सी. सी. 115 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 1826.

[2] (1914) 3 के. बी. 458.

"किंतु एक नियम है जिसका पालन करने के लिए हम निश्चित रूप से बाध्य हैं – जब इस न्यायालय द्वारा किसी सिद्धांत के प्रश्न पर कोई विनिश्चय पारित किया जाता है, तो इस न्यायालय के लिए यह उचित नहीं होगा कि उस विनिश्चय से पीछे हटा जाए, चाहे उस मामले में इस न्यायालय के विचार कुछ भी हों । अन्यथा विधि के प्रश्न पर अंतिमता कभी प्राप्त नहीं की जा सकेगी । यदि यह दलील दी जाती है कि विनिश्चय गलत है तो, उचित अनुक्रम यह होगा कि अंतिम अधिकरण हाऊस आफ लार्डस की शरण में गया जिनको विधि को स्थिरिकृत करने और यह अभिनिर्धारित करने की शक्ति प्राप्त है कि जो विनिश्चय हमारे ऊपर बाध्यकारी है, उत्तम विधि नहीं है ।"

37. अपीलार्थियों ने समान आधार पर **क्विन** बनाम **लीथेम**[1] वाले मामले में हाऊस आफ लार्डस द्वारा दिए गए निर्णय के निम्नलिखित लेखांश को निर्दिष्ट किया, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है :–

"... समान प्रकृति की दो माताभिव्यक्तियां हैं, जिनको मैं करना चाहता हूं, एक को यहां पर दोहराया जाता है जिसको मैं पहले भी अनेक बार कह चुका हूं कि प्रत्येक निर्णय को उसी प्रकार पढ़ा जाना चाहिए जैसे कि वह साबित किए जा चुके विशिष्ट तथ्यों पर लागू होता हो या उसके साबित हो जाने के बाबत उपधारणा कर ली गई हो चूंकि अभिव्यक्तियों, जिनको उसमें पाया जा सकता है, की सामान्यता के बारे में यह आशयित नहीं किया जा सकता कि वे संपूर्ण विधि की व्याख्यान, के मामले के विशिष्ट तथ्यों जिनमें उन अभिव्यक्तियों को पाया जाता है, द्वारा शासित और अर्हता प्राप्त हैं । द्वितीय यह है कि कोई भी मामला मात्र एक निर्णयज विधि होता है जिसके लिए उसको वास्तव में निर्णीत किया जाता है । मैं इस बात से पूर्णतया इनकार करता हूं कि इसको किसी ऐसी प्रतिपादना के बाबत उद्धृत किया जा सकता है जिसका तर्कसंगत रूप से अनुसरण किया जा सकता हो तर्कणा की ऐसी रीति से यह उपधारित होता है कि विधि निश्चित रूप से एक

---

[1] (1901) ए. सी. 495.

तर्कसंगत संहिता है जबकि प्रत्येक कानूनविद् को इस बात को स्वीकार करना चाहिए कि विधि सदैव पूर्णतया तर्कसंगत नहीं होती ।"

38. अपीलार्थियों ने अंतत: **भारत संघ** बनाम **हार्डी एक्सप्लोरेशन एंड प्रोडक्शन (इंडिया) इनकारपोरेटेड**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया । अपीलार्थियों ने निवेदन किया कि उच्चतम न्यायालय द्वारा माध्यस्थम् निर्देश के स्थान के बाबत विवाद्यक पर इस बात को ध्यान में रखते हुए कि मामले को **हार्डी** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय में वृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया जा चुका है, अंतिम रूप से निर्णय पारित नहीं किया जाना चाहिए, जैसाकि इस निर्णय के पैरा 23 से स्पष्ट है :–

> "23. यद्यपि हमारे विचार में मध्यस्थों द्वारा माध्यस्थम् करार/अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् करार के अधीन उद्भूत कार्यवाहियों को माध्यस्थम् आयोजित किए जाने के प्रयोजनार्थ स्थान के संबंध में प्रश्न को करार के निबंधनों को ध्यान में रखते हुए आरंभिक रूप से निर्णीत किया जाना अपेक्षित होता है, किंतु इस न्यायालय की अनेक न्यायपीठों, जैसाकि वर्णन ऊपर किया गया है, द्वारा पारित अनेक विनिश्चयों में अधिकथित विधि को दृष्टि में रखते हुए और पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेलों द्वारा दिए गए ऊपर वर्णित निवेदनों पर विचारोपरांत और साथ ही अपील में अंतर्वलित विवाद्यकों, जो अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के मामलों में बारंबार उद्भूत हुए, को ध्यान में रखते हुए हमारी यह सुविचारित राय है कि यह उचित मामला है जिसमें हमको 2013 के उच्चतम न्यायालय नियम के आदेश 6, नियम 2 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए और इस मामले (अपील) को इस न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार किए जाने के लिए सुनवाई हेतु निर्दिष्ट कर देना चाहिए ।"

39. प्रत्यर्थियों ने **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के विरोध में अपनी दलीलें दी किंतु उन्होंने एक क्षण के लिए भी

---

[1] 2018 (6) स्केल 504.

उपरोक्त मामलों में दिए गए निर्णय का अनादर नहीं किया । उन्होंने निवेदन किया कि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई इतरोक्ति अनवधानतावश है चूंकि यह इतरोक्ति **भारत एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा96 में दिए गए अभिव्यक्त निष्कर्ष के विपरीत है । प्रत्यर्थियों ने निवेदन किया कि यद्‌यपि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया निष्कर्ष 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ङ) को निर्दिष्ट करता है, इस मामले में यह इस निष्कर्ष पर पहुंचने में ऐसे किसी भी उपबंध पर विचार नहीं किया गया है कि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाला मामला 1996 की अधिनियम की धारा 20 को निर्दिष्ट करता है जो इस बात का पता लगाए जाने के प्रयोजनार्थ पूर्णतया असुसंगत है कि कौन सा न्यायालय माध्यस्थम् करार के संबंध में 1996 के अधिनियम के भाग-1 के अंतर्गत याचिका या आवेदन प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ उपयुक्त होगा और यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई इतरोक्ति अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थमों के संबंध में दिए गए निर्णयों पर आधारित है जिनमें माध्यस्थम् का स्थान निरपवाद रूप से भारत के बाहर था । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थियों ने यह निवेदन किया कि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई इतरोक्ति फोरम चयन खंड है जो 1996 के अधिनियम के भाग-1 के अधीन समस्त याचिकाएं प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी पदनामित न्यायालय के बाबत उपबंधित करता है और एक अन्य खंड है जो किसी अन्य स्थान पर माध्यस्थम् निदेश के स्थान के बाबत उपबंधित करता है ।

40. प्रत्यर्थियों का प्रकथन है कि विधि में ऐसा कुछ भी नहीं है जो माध्यस्थम् करार के संबंध में पक्षों के मध्य 1996 के अधिनियम के भाग-1 के अधीन समस्त आवेदन प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी विशिष्ट न्यायालय या किसी विशिष्ट शहर के न्यायालय को उल्लिखित किए जाने के लिए उपबंधित करता हो और पूर्णत: किसी भिन्न शहर को माध्यस्थम् निदेश के स्थान के रूप में उल्लिखित करता हो । प्रत्यर्थियों का प्रकथन है कि ऐसी स्थिति में **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई इतरोक्ति को उत्तम विधि

अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता चूंकि पक्षों ने दो प्रयोजनों के लिए पृथक्-पृथक् स्थानों को चुना है और ऐसी कोई विधि नहीं है जो यह अपेक्षा करती हो कि एक स्थान की रुचि दूसरे स्थान की रुचि द्वारा प्रभावित हो सके । अत: प्रत्यर्थियों ने निवेदन किया कि किसी भी करार के दोनों पक्ष, जो एक ही माध्यस्थम् खंड द्वारा शासित होते हैं, यह अनुध्यात कर सकते हैं कि कलकत्ता में स्थित सक्षम न्यायालयों को याचिकाओं और माध्यस्थम् करार से संबंधित आवेदनों पर विचार करने की अनन्य अधिकारिता प्राप्त होगी और इसी क्रम में इस बाबत भी सहमत हैं कि माध्यस्थम् का स्थान मुंबई होगा । जहां तक न्यायालय की रुचि के संबंध में फोरम चयन खंड का प्रश्न है, प्रत्यर्थियों ने निवेदन किया कि हमारे समक्ष प्रस्तुत उदाहरण में कलकत्ता में स्थित समुचित न्यायालयों को माध्यस्थम् करार से संबंधित समस्त याचिकाओं और आवेदनों पर विचार करने की अनन्य अधिकारिता प्राप्त होगी, जहां तक वे न्यायालय माध्यस्थम् करार से संबंधित किसी याचिका या आवेदन को प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ 1996 की अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) द्वारा अन्यथा रूप से सशक्त हैं । प्रत्यर्थियों की आगे यह दलील है कि 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i), सिविल प्रक्रिया संहिता की धाराओं 16 से 20 या इस न्यायालय के लेटर्स पेटेंट नियम के खंड 12 से किसी भी प्रकार से भिन्न नहीं है । इन निवेदनों का प्रभाव यह है कि यदि इस उच्च न्यायालय के अतिरिक्त किसी अन्य न्यायालय को पक्षों के मध्य करार द्वारा अपनी रुचि के फोरम के रूप में उल्लिखित किया जाता है, तो उस न्यायालय को संहिता की धाराओं 16 से 20 के अधीन मान्यता प्राप्त नियमों के अंतर्गत प्राधिकार होगा या यदि वह न्यायालय वही न्यायालय है, तो इस न्यायालय को मामले को प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ लेटर्स पेटेंट के खंड 12 के अधीन प्राधिकृत किया जाना होगा ।

41. प्रत्यर्थियों ने निवेदन किया कि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में परिकल्पित इतरोक्ति त्रुटिपूर्ण है चूंकि मामले के इस पहलू पर विचार नहीं किया गया था और इस पहलू पर मौन रहते हुए निर्णय पारित कर दिया गया । इस संबंध में **भारत एल्युमिनियम कंपनी**

लिमिटेड (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का पैरा 96 सुसंगत है । यद्‌यपि, इस निर्णय को एक विदेशी माध्यस्थम्‌ पंचाट के संदर्भ में पारित किया गया था, फिर भी इसके लाभ को ध्यान में रखते हुए इसे निर्दिष्ट किया जा सकता है :-

"96. ... हमारा यह विचार है कि पद 'माध्यस्थम्‌ की विषयवस्तु' के बारे में पद 'वाद की विषयवस्तु' के साथ भ्रमित नहीं हुआ जा सकता । पद धारा 2(1)(ङ) में 'विषयवस्तु' भाग-1 तक सीमित है । इस संदर्भ और संबंध विवाद समाधान की प्रक्रिया के साथ है । इसका उद्देश्य माध्यस्थम्‌ कार्यवाहियों पर पर्यवेक्षणीय नियंत्रण रखने वाले न्यायालयों की पहचान करना है । इसलिए यह पद ऐसे न्यायालय को निर्दिष्ट करता है, जो आवश्यक रूप से माध्यस्थम्‌ प्रक्रिया के स्थान का न्यायालय होगा । हमारे विचार में धारा 2(1)(ङ) में उपबंध का अर्थान्वयन धारा 20 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए जो किसी पक्ष की स्वायत्तता को मान्यता प्रदान करते हैं । वास्तव में, संकीर्ण अर्थान्वयन को स्वीकार किया जाना, जैसाकि अपीलार्थियों के विद्‌वान्‌ काउंसेल द्‌वारा किया गया, धारा 20 को निरर्थक बना देगा । हमारे विचार में विधान-मंडल ने आशयपूर्वक दो न्यायालयों को अधिकारिता प्रदान की है, अर्थात्‌ वह न्यायालय जिसको वादकरण के आधार पर अधिकारिता प्राप्त होगी और वह न्यायालय जहां माध्यस्थम्‌ संपन्न हुआ । यह आवश्यक था चूंकि अनेक अवसरों पर करार में माध्यस्थम्‌ के लिए ऐसे स्थान का उपबंध किया गया जो दोनों पक्षों के लिए तटस्थ स्थान था । इसलिए उन न्यायालयों, जिसकी अधिकारिता के अंतर्गत माध्यस्थम्‌ संपन्न हुआ, से अपेक्षा की जाती है कि वे माध्यस्थम्‌ प्रक्रिया पर पर्यवेक्षणीय नियंत्रण रखें । उदाहरणार्थ, यदि माध्यस्थम्‌ दिल्ली में संपन्न होता है, जबकि दोनों पक्षों में से कोई भी पक्ष दिल्ली का नहीं है (दिल्ली को मुंबई के एक पक्ष और कोलकत्ता के दूसरे पक्ष के मध्य माध्यस्थम्‌ के लिए तटस्थ स्थान के रूप में चुना गया है) और दिल्ली में स्थित अधिकरण 1996 के माध्यस्थम्‌ अधिनियम की धारा 17 के अधीन अंतरिम आदेश पारित करता है, तो धारा

अधीन ऐसे अंतरिम आदेश के विरुद्ध अपील दिल्ली के न्यायालयों में की जा सकेगी क्योंकि दिल्ली के न्यायालय ही वे न्यायालय हैं, जो माध्यस्थम् कार्यवाहियों और अधिकरण पर पर्यवेक्षणीय अधिकारिता रखते हैं । यह इस तथ्य के बावजूद होगा कि संविदा के अधीन निर्वहन की जाने वाली बाध्यताओं का पालन या तो मुंबई में किया जाना है या कोलकत्ता में और दिल्ली में केवल माध्यस्थम् संपन्न होना है । इन परिस्थितियों में दोनों ही न्यायालयों को अधिकारिता प्राप्त होगी, अर्थात् वह न्यायालय जिसकी अधिकारिता के अंतर्गत वाद की विषयवस्तु अवस्थित है और वह न्यायालय जिसकी अधिकारिता के अंतर्गत विवाद समाधान अर्थात् माध्यस्थम् संपन्न हुआ ।"

42. **भारत एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले निर्णय से लिए गए पूर्वोक्त लेखांश को **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में उद्धृत किया गया है किंतु प्रत्यर्थियों के अनुसार **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय में, **भारत एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा की गई इतरोक्ति का उल्लेख नहीं किया गया कि दोनों ही न्यायालयों, वह न्यायालय जो वाद फाइल किए जाने की स्थिति में अन्यथा रूप से कार्यवाही करने के लिए सक्षम है और वह न्यायालय जिसकी अधिकारिता के भीतर माध्यस्थम् निदेश के लिए चुना गया स्थान अवस्थित है, 1996 के अधिनियम के भाग-1 के अंतर्गत याचिकाओं और आवेदनों पर विचार किए जाने की अधिकारिता रखते हैं, केवल वह न्यायालय नहीं जिसकी अधिकारिता के अंतर्गत माध्यस्थम् निदेश का चुना गया स्थान अवस्थित है ।

43. प्रत्यर्थियों का अभिवाक् है कि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् से संबंधित विधि को लागू करते हुए, जहां अधिनियम के भाग-1 के अंतर्गत अनन्य रूप से शासित होने वाले किसी मामले में (माध्यस्थम् के लिए) चुना गया स्थान भारत के बाहर एक मूल बुनियादी त्रुटि कारित की गई है चूंकि यह मामला घरेलू माध्यस्थम् का मामला है । प्रत्यर्थियों ने अभिवाक् किया कि 1996 के अधिनियम की धारा 20 अधिनियम के भाग-1 के अंतर्गत

याचिका या आवेदन प्राप्त करने के लिए सशक्त न्यायालय की कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं करती । अधिनियम की धारा 20 माध्यस्थम् करार के पक्षों को माध्यस्थम् के स्थान के बाबत सहमत होने के लिए स्वतंत्र छोड़ देती है और यह उपबंध भी करती है कि माध्यस्थम् के स्थान के संबंध में किसी करार के न होने पर वह स्थान पक्षों की सुविधा को सम्मिलित करते हुए मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा विनिर्धारित किया जाएगा । 1996 के अधिनियम की धारा 20 माध्यस्थम् के लिए चुने गए स्थान और माध्यस्थम् अधिकरण की किसी विशेष बैठक के स्थान के मध्य विभेद भी करती है । पुन: ऐसे किसी स्थान के बाबत निर्णय माध्यस्थम् अधिकरण पर छोड़ दिया जाता है और स्थान के बाबत विचार-विमर्श की विषयवस्तु, साक्षियों, विशेषज्ञों या पक्षों को सुने जाने या दस्तावेजों, माल या अन्य संपत्ति के निरीक्षण के प्रयोजनार्थ माध्यस्थम् अधिकरण के सदस्यों के मध्य मशविरा के लिए स्थान की उपयुक्तता है ।

44. प्रत्यर्थियों ने एक अन्य प्रश्न उठाया कि कौन सा न्यायालय 1996 के अधिनियम के भाग-1 के अंतर्गत किसी याचिका या आवेदन को विचारार्थ प्राप्त करने के लिए उपयुक्त होगा, यदि माध्यस्थम् के स्थान की बाबत कोई करार नहीं है, किंतु माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा स्थान का चुनाव कर लिया गया है । प्रत्यर्थियों के अनुसार माध्यस्थम् के स्थान की पसंद या उसका अभाव न्यायालय, जिसके समक्ष 1996 के अधिनियम के भाग-1 के अंतर्गत याचिका या आवेदन फाइल किया जाना है, की पसंद पर कोई प्रभाव नहीं रखेगी ।

45. तत्पश्चात् प्रत्यर्थियों ने विनिश्चयानुपात निर्णीतानुसरण, मौनानुकूलता और इतरोक्ति के सिद्धांतों पर अनेक निर्णय उद्धृत किए । प्रत्यर्थियों ने सर्वप्रथम **दलबीर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में अल्पसंख्यक मत द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया । इस निर्णय का पैरा 22 का अवलंब इस दलील के समर्थन में लिया गया कि संविधान के अनुच्छेद 141 के अर्थान्तर्गत उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि क्या है । इस संदर्भ में निम्नलिखित लेखांश सुसंगत है :-

---

[1] (1979) 3 एस. सी. सी. 745 = ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1384.

"22. .... किसी विशिष्ट मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर दंडादेश के प्रश्न पर विनिश्चय को बाध्यकारी निर्णयज विधि कभी भी नहीं माना जा सकता, जैसेकि संविधान के अनुच्छेद 141 के अर्थान्तर्गत 'घोषित विधि' ताकि भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर समस्त न्यायालयों को बाध्य किया जा सके । निर्णयज विधियों के स्थिरीकृत सिद्धांतों के अनुसार प्रत्येक विनिश्चय में तीन आधारी संघटक समाविष्ट होते हैं –

"(i) तात्विक, प्रत्यक्ष और अनुमानिक तथ्यों के निष्कर्ष । तथ्यों के अनुमानिक निष्कर्ष वे अनुमान होते हैं जिनको न्यायाधीश प्रत्यक्ष और संकल्पनात्मक तथ्यों से निकालता है;

(ii) तथ्यों द्वारा प्रकट की गई विधिक समस्याओं पर लागू होने वाले विधि के सिद्धांतों के कथन; और

(iii) उपरोक्त (i) और (ii) द्वारा समिश्र प्रभाव पर आधारित निर्णय ।"

स्वमेव पक्षों और उनके निकट संबंधियों के प्रयोजनार्थ विनिश्चय के संघटक (iii) तात्विक संघटक होते हैं चूंकि यह किसी कार्रवाई के विषयवस्तु के संबंध में उनके अधिकारों और दायित्वों को अंतिम रूप से विनिर्धारित करते हैं । ऐसा निर्णय पक्षों को किसी विवाद को पुन: उठाने से विबंधित करता है तथापि, निर्णयज विधियों के सिद्धांतों के प्रयोजनार्थ घटक (ii) किसी भी विनिश्चय में महत्वपूर्ण तत्व होते हैं । वास्तव में यही विनिश्चयानुपात होता है । यही सब कुछ नहीं होता है जिसे न्यायाधीश द्वारा निर्णय देते समय कहा जाता है और जो निर्णयज विधि गठित करता है । किसी पक्ष पर किसी न्यायाधीश के बाध्यकारी विनिश्चय की एकमात्र बात वह सिद्धांत होता है जिसके आधार पर मामला निर्णीत किया जाता है और इस कारणवश यह महत्वपूर्ण है कि किसी विनिश्चय का विश्लेषण किया जाए और उसको विनिश्चयानुपात से पृथक् किया जाए । क्वैलकास्ट (बॉलवरहेम्पटन) लिमिटेड **बनाम** हेम्स [एल. आर. 1959 ए. सी. 743] वाले महत्वपूर्ण निर्णय में यह अधिकथित किया गया कि विनिश्चयानुपात को पाए गए तथ्यों

द्वारा उठाई गई विधिक समस्या पर लागू की जाने वाली विधि के कथन, जिस पर विनिश्चय आधारित होता है, के रूप में परिभाषित किया जा सकता है । विनिश्चय के दो अन्य तत्व निर्णयज विधि नहीं होते । कोई भी निर्णय बाध्यकारी नहीं होता है (सिवाय स्वयमेव पक्षों पर ही प्रत्यक्ष रूप से बाध्यकारी होने के) और न ही तथ्यों के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष .....।"

46. प्रत्यर्थियों द्वारा उद्धृत एक अन्य निर्णय **दिल्ली नगर निगम** बनाम **गुरनाम कौर**[1] वाला मामला है । इस मामले के पैरा 11 में अनवधानता और मौनानुकूलता की संकल्पनाओं पर विचार किया गया है :-

"11. विधिक उद्घोषणाएं, जो विनिश्चयानुपात का भाग नहीं होती, को इतरोक्ति के रूप में वर्गीकृत किया गया है और वे प्राधिकार से परिपूर्ण नहीं होती । हम विद्वान् न्यायाधीश, जिसने **जमना दास** (उपरोक्त) वाले मामले में निर्णय पारित किया और वे न्यायाधीश, जो उनके साथ सहमत हुए, के प्रति ससम्मान इस बाबत सहमत नहीं हो सकते कि यह न्यायालय उस मामले में पारित निर्णय का अनुसरण करने के लिए बाध्य हैं । उस निर्णय को बिना किसी दलील और विधि के सुसंगत उपबंधों, जिनके द्वारा नगर निगम को बिना कोई प्राधिकार प्रदर्शित किए किसी भी सार्वजनिक स्थान, जैसेकि फुटपाथों या सार्वजनिक सड़कों से अतिक्रमण हटाए जाने की शक्तियां प्रदान की गई थीं, को निर्दिष्ट किए बिना पारित किया गया था । तद्नुसार, हम उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय को मान्य नहीं ठहराते क्योंकि हमको ऐसा प्रतीत होता है कि सैद्धांतिक रूप से यह गलत है और इसको सुसंगत उपबंधों के निबंधनों के अंतर्गत न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता । किसी भी निर्णय, यदि यह पाया जाता है कि वह निर्णय किसी कानून के निबंधनों का अनदेखा करते हुए पारित किया गया है या किसी ऐसे नियम का अनदेखा करते हुए पारित किया गया है जो कानून का बल रखता है, के बारे में यह धारणा की जानी चाहिए कि उसको अनवधानतावश पारित किया गया है । जहां तक

---

[1] (1989) 1 एस. सी. सी. 101.

आदेश से यह दर्शित होता है कि न्यायालय के समक्ष इस प्रश्न पर कि क्या नगर निगम को फुटपाथ वाले स्थान के लिए निर्धारित स्थल पर दुकान निर्मित किए जाने के लिए उचित रूप में विवश करते हुए कोई निर्देश दिया गया है या नहीं, कोई दलील नहीं दी गई । प्रो. पी. जे. फिटजेराल्ड, जो सालमंड ऑन ज्यूरिसप्रूडेंस के 12वें संस्करण के संपादक हैं, ने इस पुस्तक की पृष्ठ 153 पर मौनानुकूलता की संकल्पना को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है –

यांत्रिक भाव में मौन रहते हुए पारित किया गया कोई विनिश्चय, जिसको इस वाक्यांश के साथ संलग्न किया जाना है, यह है कि जब विनिश्चय में अंतर्वलित विधि के किसी विशिष्ट बिंदु की न्यायालय द्वारा संकल्पना नहीं की गई है या उस बिंदु पर अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है । न्यायालय अपने विवेक का प्रयोग करते हुए बिंदु 'क', जिस पर वह विचार करता है और अपना निर्णय पारित कर सकता है, के कारण किसी एक पक्ष के पक्ष में निर्णय पारित कर सकता है । तथापि, यह दर्शित किया जा सकता है कि न्यायालय को तर्कसंगत रूप से किसी विशिष्ट पक्ष के पक्ष में निर्णय पारित नहीं करना चाहिए जब तक कि वह उसके पक्ष में बिंदु 'ख' पर भी अपना निर्णय पारित नहीं कर देता ; किंतु न्यायालय द्वारा बिंदु 'ख' पर न तो दलीलें सुनी गई और न ही विचार किया गया । यद्यपि, इन परिस्थितियों में 'ख' मामले के तथ्यों में तर्कसंगत रूप से अंतर्वलित था और यद्यपि मामले में विनिर्दिष्ट रूप से निर्णय पारित किया गया था, फिर भी यह निर्णय बिंदु 'ख' पर निर्णयज विधि नहीं है । बिंदु 'ख' पर पारित किया गया निर्णय मौनानुकूलतावश है ।"

47. प्रत्यर्थियों द्वारा **जयंत वर्मा** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में दिए गए नवीनतम निर्णय को इस प्रतिपादना के समर्थन में उद्धृत किया गया है कि जब विधि का विश्लेषण किए बिना कोई गूढ़ विचार व्यक्त किया जाता है, तो यह संभव है कि ऐसा कोई विनिश्चयानुपात संभव न

[1] (2018) 4 एस. सी. सी. 743.

हो जो उस निर्णय से निष्कर्षित किया जा सके ।

48. अंततः, दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **एन्ट्रिक्स कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **देवास मल्टीमीडिया प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय को विचारार्थ प्रस्तुत किया गया जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दी गई इतरोक्ति पर विचार किया गया । उस मामले में अपीलार्थी ने दिल्ली उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष 1996 के अधिनियम की धारा 11 के अधीन दिल्ली उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया और माध्यस्थम् अधिकरण गठित किए जाने की प्रार्थना की । तत्पश्चात् उस अपीलार्थी ने अधिनियम की धारा 9 के अधीन बैंगलोर सिटी न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी को अंतरराष्ट्रीय चैम्बर ऑफ कामर्स के समक्ष लंबित माध्यस्थम् निदेश में आगे अग्रसर होने से निषिद्ध किए जाने का आदेश पारित किए जाने की ईप्सा इस आधार पर की कि यह माध्यस्थम् निदेश पक्षों के मध्य करार के विपरीत है । प्रत्यर्थी बैंगलोर सिटी न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ और उसने आक्षेप फाइल किए जाने के लिए समय चाहा । इसी दौरान अंतरराष्ट्रीय चैम्बर ऑफ कामर्स के समक्ष लंबित कार्यवाही को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पदनामिती ने अपीलार्थी द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष अधिनियम की धारा 11 के अधीन फाइल की गई कार्यवाही में स्थगित कर दिया गया । अंततः, धारा 11 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि अंतरराष्ट्रीय चैम्बर ऑफ कामर्स नियम के अधीन माध्यस्थम् अधिकरण पहले ही गठित किया जा चुका है । अधिनियम की धारा 11 के अधीन फाइल किए गए उक्त आवेदन को खारिज करते हुए यह मताभिव्यक्ति की गई कि दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित अपीलार्थी को यह अधिकार होगा कि वह अपने आक्षेपों को समुचित कार्यवाहियों में फाइल कर सके ।

49. अंतरराष्ट्रीय चैम्बर ऑफ कामर्स के माध्यस्थम् अधिकरण ने दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित कार्यवाहियों के प्रत्यर्थी के पक्ष

---

[1] (2018) एस. सी. सी. ऑन लाइन दिल्ली 9338.

में एक पंचाट पारित किया । तत्पश्चात् उस प्रत्यर्थी ने पंचाट पारित किए जाने के पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर अधिनियम की धारा 9 के अधीन दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल किया । तथापि, उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित अपीलार्थी ने बैंगलोर सिटी न्यायालय के समक्ष पंचाट को चुनौती देने के प्रयोजनार्थ अधिनियम की धारा 34 के अधीन आवेदन फाइल किया । दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि **एन्ट्रिक्स** (उपरोक्त) वाले मामले में बैंगलोर के न्यायालय के समक्ष धारा 9 के अधीन फाइल की गई मूल याचिका पोषणीय नहीं है और **देवास** (उपरोक्त) द्वारा दिल्ली में पंचाट पारित किए जाने के पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर धारा 9 के अधीन फाइल की गई पश्चात्वर्ती याचिका पोषणीय है । इसके परिणामस्वरूप यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि **एन्ट्रिक्स** (उपरोक्त) वाले मामले में बैंगलोर न्यायालय के समक्ष अधिनियम की धारा 34 के अधीन फाइल की गई याचिका किन्हीं विशेष परिस्थितियोंवश फाइल की गई थीं । खंड न्यायपीठ के समक्ष जो प्राथमिक प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ, यह था कि क्या पक्षों ने नई दिल्ली को माध्यस्थम् के स्थान के रूप में चुना था और उस स्थान को चुने जाने के कारण नई दिल्ली स्थित न्यायालयों को अनन्य अधिकारिता प्रदान कर दी गई थी । दिल्ली उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने रिपोर्ट के पैरा 53 पर देखा कि **भारत एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में अकाट्य रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पक्षों द्वारा चुने गए स्थान पर स्थित न्यायालय अनन्य अधिकारिता नहीं रखते ; किंतु दो न्यायालयों को समवर्ती अधिकारिता प्राप्त होगी – माध्यस्थम् के लिए चुने गए स्थान पर स्थित न्यायालय और वह न्यायालय जिसकी अधिकारिता के भीतर वादकरण उद्भूत हुआ । उपरोक्त परिस्थितियों के प्रकाश में अपील को यह मताभिव्यक्ति करते हुए मंजूर कर लिया गया कि दिल्ली उच्च न्यायालय को माध्यस्थम् करार से उद्भूत आवेदनों का न्यायनिर्णयन करने या उनका निपटारा करने की अनन्य अधिकारिता प्राप्त नहीं है और अधिनियम की धारा 42 दिल्ली उच्च न्यायालय को **देवास** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रस्तुत किए गए आवेदन को सुनने या निर्णीत करने से विवर्जित करती है ।

50. परस्पर विरोधी दलीलों के प्रकाश में और विधिक विवाद्यकों पर विभिन्न निर्णयों पर विचारोपरांत यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में पारित निर्णय में दिए गए तथ्य अधिकथित विनिश्चयानुपात को खोजा जाए । यह महत्वपूर्ण है क्योंकि चाहे ऐसा हुआ हो या न हुआ हो, **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया विनश्चयानुपात सुसंगत विधिक विचारणाओं पर प्रतिपादित हुआ है, उक्त विनिश्चयानुपात के बाध्यकारी प्रभाव का अनदेखा नहीं किया जा सकता या उससे बचा नहीं जा सकता ।

51. **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में पक्षों के मध्य करार में माध्यस्थम् के स्थान का चयन खंड समाविष्ट था और इस करार में एक फोरम चयन खंड भी समाविष्ट था । जैसाकि घटित हुआ, इन दोनों ही खंडों में मुंबई और मुंबई स्थित न्यायालयों की पहचान माध्यस्थम् के स्थान और फोरम के लिए पसंद के स्थान के रूप में अलग-अलग की गई । **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रकट रूप से दी गई इतरोक्ति यह है कि घरेलू माध्यस्थम् के मामले में, जहां माध्यस्थम् के स्थान की पसंद और फोरम चयन खंड से एक ही स्थान उपदर्शित होता है, केवल उन स्थानों पर स्थित न्यायालयों को 1996 के अधिनियम (सिवाय स्पष्ट कारणों के अधिनियम की धारा 11 के अधीन आवेदनों और धारा 8 के अधीन आवेदनों) के भाग-1 के अधीन किसी आवेदन पर विचार करने की अधिकारिता होगी ।

52. **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दी गई स्पष्ट इतरोक्ति किसी ऐसी स्थिति को आच्छादित नहीं करती जिसमें किसी घरेलू माध्यस्थम् में माध्यस्थम् निदेश का स्थान 'X' है और फोरम चयन खंड ने 'Y' स्थित स्थान के न्यायालयों की पहचान माध्यस्थम् करार से संबंधित याचिकाओं और आवेदनों को सुने जाने के प्रयोजनार्थ अनन्य रूप से अधिकारिता रखने वाले न्यायालयों के रूप में की है । वास्तव में पक्षों की स्वायत्तता के इस युग और दिवस में पक्षों का यह कर्तव्य है कि वे इस बाबत निर्णय लें कि वे माध्यस्थम् निदेश का आयोजन कहां चाहते हैं और वे माध्यस्थम् करार से संबंधित याचिकाओं और आवेदनों को चलाए जाने की बाबत किस न्यायालय की पहचान करते हैं । इस बाबत कोई विधिक अपेक्षा नहीं है कि दोनों ही न्यायालय

समान हों और यह भी संभव है कि पक्ष इस बाबत सहमत हों कि माध्यस्थम् निदेश का स्थान दिल्ली स्थित न्यायालय होंगे किंतु कलकत्ता स्थित न्यायालय माध्यस्थम् करार से संबंधित समस्त मामलों पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ अनन्य अधिकारिता रखेंगे ।

53. तथापि, पक्षों की स्वायत्तता की सीमा लोक नीति के नियमों के अध्ययधीन है, जैसाकि संहिता की धाराओं 15 से 20 में मान्यता प्रदान की गई है, किसी ऐसे मामले जिसमें कोई न्यायालय संहिता द्वारा शासित है और चार्टड उच्च न्यायालय के मामले में लेटर्स पेटेंट के खंड 12 द्वारा शासित है, जैसे कि यह न्यायालय । लोक नीति के ऐसे नियम से जो दर्शित होता है, यह है कि किसी करार के पक्ष केवल उस न्यायालय को अनन्य अधिकारिता प्रदान कर सकते हैं, जिसको विधित: किसी कार्रवाई पर विचार करने का प्राधिकार प्राप्त होता है ; पक्ष करार द्वारा किसी ऐसे न्यायालय जिसको अन्यथा रूप से किसी कार्रवाई पर विचार करने का प्राधिकार प्राप्त नहीं होता, अधिकारिता प्रदान नहीं कर सकते । यही वह नियम है जो **हकम सिंह** बनाम **गैमन (इंडिया) लिमिटेड**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय में समाविष्ट है । **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का पैरा 4 इस विधिक विवाद्यक पर बिल्कुल स्पष्ट है और **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में जिस नियम को मान्यता प्रदान की गई है, में आज तक हस्तक्षेप नहीं किया गया :-

> "4. सिविल प्रक्रिया संहिता माध्यस्थम् अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाहियों पर संपूर्णत: लागू होती है । तद्नुसार, किसी पंचाट को फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ कार्यवाही पर विचार किए जाने के लिए माध्यस्थम् अधिनियम के अंतर्गत न्यायालयों की अधिकारिता सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों द्वारा शासित होती है । करार के खंड 13 द्वारा पक्षों के मध्य यह अनुध्यात किया गया था कि संविदा के बाबत यह उपधारणा की जाएगी कि संबद्ध पक्ष इस संविदा में बम्बई में प्रविष्ट हुए थे । किसी भी स्थिति में प्रत्यर्थियों का प्रधान कार्यालय बम्बई में स्थित था और वे निविदा की शर्तों के अंतर्गत उद्भूत होने वाले वादकरण और बम्बई के न्यायालयों में

[1] (1971) 1 एस. सी. सी. 286 = ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 740.

फाइल होने वाले मुकदमे के संबंध में दायी थे । करार द्वारा पक्षों को यह अधिकार नहीं था कि वे आपस में करार द्वारा किसी ऐसे न्यायालय को अधिकारिता प्रदान कर सकते हैं जिसको संहिता के अंतर्गत अधिकारिता प्राप्त नहीं थी । किंतु जहां दो या दो से अधिक न्यायालयों को सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत किसी वाद या कार्यवाही पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त है, तो पक्षों के मध्य इस बाबत कोई करार कि उनके मध्य विवाद होने पर उनमें से किसी एक न्यायालय द्वारा विचार किया जाएगा, लोक नीति के विपरीत नहीं है । इस प्रकार का करार संविदा अधिनियम की धारा 28 का अतिलंघन नहीं करता ।"

(अधोरेखांकित पर बल दिया गया ।)

54. 1940 के माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 2(ग), जो **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में पारित किए गए निर्णय पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ सुसंगत है, 'न्यायालय' को 'निदेश की विषयवस्तु सृजित करने वाले प्रश्नों को निर्णीत करने की अधिकारिता रखने वाले किसी सिविल न्यायालय के अर्थांतर्गत परिभाषित करती है, यदि वह निदेश वाद की विषयवस्तु रहा हो, किंतु किसी लघुवाद न्यायालय को सम्मिलित नहीं करती सिवाए धारा 21 के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियों के प्रयोजनों के सिवाय । यहां पर 1940 के अधिनियम के प्रयोजनार्थ यह सुसंगत होगा कि पश्चात्वर्ती कानून 1996 के अधिनियम की धारा 31(4) का उल्लेख किया जाए :-

"31. अधिकारिता (1) ....

(2) ....

(3) ....

(4) इस अधिनियम में अन्यत्र या किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां कि किसी निर्देश में इस अधिनियम के अधीन कोई आवेदन उसे ग्रहण करने के लिए सक्षम किसी न्यायालय में किया गया हो, वहां माध्यस्थम् कार्यवाहियों पर अधिकारिता केवल वही न्यायालय रखेगा और उस

निर्देश तथा माध्यस्थम् कार्यवाहियों से उद्भूत होने वाले सब पश्चात्वर्ती आवेदन उसी न्यायालय में किए जाएंगे न कि किसी अन्य न्यायालय में ।"

55. 1996 के अधिनियम की धारा 42 में भी समरूपी उपबंध पाए जाते है :–

"42. अधिकारिता – इस भाग में अन्यत्र या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी जहां किसी माध्यस्थम् करार की बाबत इस भाग के अधीन कोई आवेदन किसी न्यायालय में किया गया है, तो वहां ऐसी माध्यस्थम् कार्यवाहियों तथा उक्त करार से उद्भूत होने वाले सभी पश्चात्वर्ती आवेदनों पर उसी न्यायालय की अधिकारिता होगी और माध्यस्थम् कार्यवाहियां उसी न्यायालय में की जाएंगी और किसी अन्य न्यायालय में नहीं ।"

56. इसे विपरीत 1996 के अधिनियम की धारा 20 उन परिस्थितियों में कोई अभिभावी प्रभाव नहीं रखती जहां अधिनियम के भाग-1 के अधीन कोई याचिका या आवेदन फाइल किया जाता है । वास्तव में, माध्यस्थम् के लिए पसंद के साथ उस न्यायालय का कोई अंतर्बंधन नहीं है जहां 1996 के अधिनियम के भाग-1 के अंतर्गत कोई याचिका या आवेदन फाइल किया जाता है । न्यायालय की पसंद का प्रश्न 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) सपठित धारा 42 और उक्त उपबंधों की सीमाओं के अध्यधीन रहते हुए पक्षों के मध्य करार द्वारा शासित होता है । अन्य शब्दों में यदि कारपोरेट अस्तित्व 'ए' और 'बी', जिनके कारबार के स्थान पुणे में स्थित हैं, किसी संविदा में प्रविष्ट होते हैं तो उस संविदा का निर्वहन केवल पुणे में ही होगा और यदि ऐसे करार में माध्यस्थम् खंड समाविष्ट होता है तो उस माध्यस्थम् करार से संबंधित समस्त याचिकाएं और आवेदन (1996 के अधिनियम की धारा 8 और 11 के अधीन आने वाले आवेदनों के अतिरिक्त) पुणे स्थित समुचित न्यायालय में ही फाइल किए जाएंगे और कहीं अन्यत्र नहीं । पुनः, यदि पुणे में स्थित किसी विशिष्ट न्यायालय की शरण ली जाती है और न्यायालय के संबंध में यह पाया जाता है कि उसके मामले पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त है या उस न्यायालय का प्राप्त

अधिकारिता के बाबत कोई आक्षेप नहीं किया गया है, तो केवल वही न्यायालय ऐसा न्यायालय होगा जो माध्यस्थम् करार से संबंधित 1996 के अधिनियम के भाग-1 के अधीन भविष्य में फाइल की जाने वाली समस्त याचिकाओं और आवेदनों पर विचार करने के लिए प्राधिकृत होगा । इस नियम का महत्व नहीं समझा जा सकता, विशेष रूप से तब जब कोई माध्यस्थम् करार अनेक निर्देश उत्पन्न करने में सक्षम हो और यदि किसी माध्यस्थम् करार के संबंध में 1996 के अधिनियम के भाग-1 के अधीन किसी मामले में एक बार किसी विशिष्ट न्यायालय की शरण ली जाती है और उस न्यायालय की अधिकारिता को संदेहों के परे स्थापित कर दिया जाता है तो वही न्यायालय समस्त पश्चात्वर्ती मामलों और माध्यस्थम् करार के संबंध में आवेदनों पर विचार करने के प्रयोजनार्थ एकमात्र फोरम होगा ।

57. इस नियम का परिणाम, जैसाकि पुणे वाले उदाहरण में लागू होता है, यह है कि ऐसी स्थिति में पक्ष पटना या पुणे या किसी अन्य स्थान जो दोनों पक्षों की पसंद का फोरम होता, में स्थित किसी न्यायालय का चयन नहीं कर सकते थे । यदि पक्षों ने पटना या पुणे या किसी अन्य स्थान पर स्थित किसी न्यायालय का चयन कर लिया, तो वह न्यायालय किसी भी कार्रवाई को फाइल किए जाने का कोई प्राधिकार नहीं रखेगा और पक्षों के मध्य करार का कोई प्रभाव नहीं होगा और वह करार **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई इतरोक्ति को ध्यान में रखते हुए व्यर्थ होगा । अतः न्यायालय के चयन में पक्षों की स्वायत्ता की सीमा सीमित है । तथापि, माध्यस्थम् निदेश के लिए स्थान के चयन में पक्षों की स्वायत्ता की सीमा अनिर्बंधित है । पुणे वाले उदाहरण के साथ चर्चा को जारी रखते हुए पक्ष माध्यस्थम् के स्थान के पटना या पुणे या पुड्डुचेरी के लिए भी सहमत हो सकते थे और उनकी यह पसंद उनके ऊपर बाध्यकारी होती ; किंतु माध्यस्थम् निदेश के बाबत स्थान के संबंध में करार उस न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं होगा जहां अधिनियम के भाग-1 के अंतर्गत कोई कार्रवाई फाइल की जाती ।

58. 1996 की अधिनियम की धारा 2(1)(ङ) के 2015 के पूर्व के संशोधन और इसी अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) के 2015 के पश्चात्

के संशोधन के बाद भी माध्यस्थम् निर्देश के स्थान के संबंध में पक्षों को प्राप्त अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, चाहे वे इसके लिए स्वेच्छा से सहमत हों या आकस्मिकतावश सहमत हो गए हों, न्यायालय जिसमें 1996 के अधिनियम के भाग-1 के अंतर्गत कोई मामला लाया जा सकता है, की पहचान किए जाने की बाबत सुसंगत विचार है । माध्यस्थम् निदेश के स्थान का अनदेखा किए जाने के लिए अच्छे और उत्तम कारण होने चाहिए । संकल्पना यह है कि माध्यस्थम् निदेश के स्थान की समानता किसी संविदा के निर्वहन के स्थान से उस स्थान पर आधारित किसी वाद कारणवश नहीं की जा सकती, जो न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लिए जाने के प्रयोजनार्थ आधार के रूप में पाया गया हो । यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि जब पक्ष किसी माध्यस्थम् निदेश के स्थान की बाबत सहमत हो सकते हैं, तो वे किसी भी प्रक्रम पर किसी पश्चात्वर्ती करार द्वारा माध्यस्थम् के अपने पसंद के स्थान को परिवर्तित भी कर सकते हैं । चूंकि न्यायालय की पसंद का स्थान माध्यस्थम् कार्यवाहियों के आरंभ के पूर्व ही सुसंगत हो जाता है, यदि किसी न्यायालय की शरण किसी ऐसे प्रक्रम पर ली जाती है, तो भविष्य में वह स्थान, जिसके बाबत माध्यस्थम् निदेश के संबंध में स्वैच्छयापूर्वक या आकस्मिकतावश सहमति व्यक्त की गई, की उस प्रक्रम पर किसी भी प्रकार की कोई सुसंगतता नहीं होगी ।

59. ससम्मान, मामले के इस पहलू पर **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त किए गए विचार को ध्यान में रखते हुए पर्याप्त रूप से विचार नहीं किया और जहां तक **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनश्चयानुपात का संबंध है, उसके लागू होने के बाबत यह संकल्पना की जा सकती है कि किसी भी करार के पक्ष आपस में निश्चित किए गए किसी भी स्थान की बाबत सहमत होने के लिए स्वतंत्र हो सकते हैं और स्थान के बाबत चुने गए न्यायालय को अनन्य रूप से अधिकार होगा कि वह माध्यस्थम् करार से संबंधित समस्त मामलों पर विचार इस तथ्य के बाद भी कर सके कि दोनों पक्षों द्वारा चुना गया न्यायालय अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) के अधीन सम्यक रूप से प्राधिकार नहीं रखता, तो वह इतरोक्ति **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रतिपादित अत्यधिक पूर्ववर्ती निर्णयज विधि द्वारा

प्रभावित होगी ।

60. अत: यह स्पष्ट है कि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चयानुपात को **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई इतरोक्ति के प्रकाश में यह उपबंधित किए जाने के प्रयोजनार्थ पढ़ा जाना चाहिए कि किसी घरेलू माध्यस्थम् के मामले में, जहां किसी माध्यस्थम् करार के पक्ष माध्यस्थम् निदेश के लिए स्थान का चुनाव करते हैं और उसी स्थान पर न्यायालयों या किसी विशिष्ट न्यायालय का चुनाव माध्यस्थम् निदेश के स्थान के रूप में अनन्य न्यायालय, जिसमें 1996 के अधिनियम के भाग-1 के अधीन याचिकाएं और आवेदन फाइल किए जा सकते हैं, के रूप में करते हैं, तो उस न्यायालय को ऐसे मामलों में अनन्य अधिकारिता प्राप्त होगी जहां तक वह न्यायालय अन्यथा रूप से अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) सपठित संहिता की धारा 15 से 20 या 1996 की अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) सपठित लेटर्स पेटेंट के खंड 12, जो इस न्यायालय में लागू होता है, के अधीन प्रदत्त अधिकार द्वारा सक्षम है ।

यही शुद्ध प्रभाव होगा यदि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई इतरोक्ति को **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में घोषित नियम के सामंजस्य में पढ़ा जाता है । चूंकि **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले को **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में निर्दिष्ट नहीं किया गया था और **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में घोषित विधि को दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा घोषित किया गया था, जैसाकि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में भी न्यायाधीश थे, इसलिए **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में घोषित विधि को समान न्यायाधीशों और समान प्राधिकार वाली न्यायपीठ द्वारा नहीं उलटा जा सकता, अत: विधि परिवर्तित नहीं हुई है और वही विधि आज भी अभिभावी है जो **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पूर्व अभिभावी थी ।

61. अत: इस प्रकार से भ्रम की स्थिति सृजित हो जाती है यदि **भारत एल्युमिनियम कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 96 में दिए गए समुचित उदाहरण का संदर्भ लेते हुए पूर्ण विनम्रता के साथ ऐसा कहा जाता है । आरंभिक रूप से **भारत एल्युमिनियम**

कंपनी (उपरोक्त) वाले मामले में विधिक विवाद्यक यह था कि क्या विदेश में पारित किए गए माध्यस्थम् पंचाट को 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन भारत में किसी न्यायालय में चुनौती दी जा सकती । **भारत एल्युमिनियम कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामले में अंतर्वलित वृहत्तर विवाद्यक अंतरराष्ट्रीय माध्यस्थमों और विदेशी माध्यस्थम् पंचाटों के संबंध में 1996 के अधिनियम के भाग-1 के लागू होने से संबंधित था । विधिक विवाद्यकों के संदर्भ में, जो **भारत एल्युमिनियम कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामले में उद्भूत हुए, 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ङ) असुसंगत थी चूंकि बालकों वाले मामले में अंतर्वलित मामला अंतरराष्ट्रीय विधि से संबंधित था जहां माध्यस्थम् निदेश के स्थान की पसंद के आधार पर महत्वपूर्ण विधि या माध्यस्थम् निदेश संचालित किए जाने के प्रयोजनार्थ लागू होने वाली विधि का चुनाव और उसका परिणाम विनिर्धारित किया जाना था, जब तक कि दोनों पक्ष अन्यथा रूप से सहमत न हो जाते । जैसाकि **भारत एल्युमिनियम कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामले में निर्णय पारित किए जाने के अनेक महीनों पूर्व इस न्यायालय द्वारा **कोल इंडिया** बनाम **कैनेडियन कॉमर्सिल कारपोरेशन**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय में मान्यता प्रदान की गई है, यदि किसी माध्यस्थम् करार के पक्ष माध्यस्थम् के स्थान के बाबत स्विटजरलैंड के लिए सहमति व्यक्त कर देते हैं, तो वे ऐसा **एल्पस** की पहाड़ियों की सुरम्य पृष्ठभूमि के कारण नहीं करते बल्कि वे ऐसा माध्यस्थम् निदेश को संचालित किए जाने के संबंध में स्विस कानूनों और उनके परिणामों को स्वीकार किए जाने के प्रयोजनार्थ करते हैं ।

62. **भारत एल्युमिनियम कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामलों में दिए गए निर्णय का पैरा 96 इस प्रकार है :-

> "उदाहरण के लिए, यदि माध्यस्थम् दिल्ली में आयोजित किया जाता है यद्यपि दोनों पक्षों में से कोई भी दिल्ली का निवासी नहीं है (दिल्ली को एक तटस्थ स्थान के रूप में चुना गया है चूंकि एक पक्ष मुंबई का निवासी है दूसरा कोलकाता का) और दिल्ली में

---

[1] ए. आई. आर. 2012 कलकत्ता 92.

स्थित अधिकरण 1996 के माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 17 के अधीन अंतरिम आदेश पारित करता है, तो धारा 37 के अधीन ऐसे अंतरिम आदेश के विरुद्ध अपील दिल्ली के न्यायालय में फाइल की जा सकेगी चूंकि दिल्ली के ही न्यायालय को माध्यस्थम् कार्यवाहियों और माध्यस्थम् अधिकरण के बाबत पर्यवेक्षणीय अधिकारिता प्राप्त है ।"

63. ससम्मान, यह उदाहरण उपयुक्त होगा यदि दिल्ली, मुंबई और कोलकाता के बजाय जेनेवा, लंदन और कोलकाता या टोरैंटो, मुंबई और सिडनी या यहां तक कि सिंगापुर, न्यूयॉर्क और दिल्ली में से किन्हीं तीन स्थानों को चुना जाता ; तब यह उदाहरण अंतरराष्ट्रीय विधि के संदर्भ में समुचित होता, चूंकि लागू होने वाली माध्यस्थम् विधियां इन तीनों ही स्थानों पर, पक्षों के देश होने और माध्यस्थम् निदेश के स्थान के रूप में चुने गए देश होने के कारण भिन्न होती । पुन: ससम्मान, यह उदाहरण **भारत एल्युमिनियम कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई चर्चा के संदर्भ में उचित नहीं है चूंकि माध्यस्थम् विधि दिल्ली, मुंबई और कोलकाता में समान है ।

64. मामले का यह पहलू **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 12 में **इनरकॉन (इंडिया) लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के संदर्भ से स्पष्ट है । इस विवाद्यक पर **इनरकॉन (इंडिया) लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 134 का आरंभिक वाक्य इस प्रकार है :–

> "134. अंतरराष्ट्रीय माध्यस्थम् से संबंधित विधि के अधिकांश विशेषज्ञों ने इस बात को स्वीकार किया है कि लगभग सभी राष्ट्रीय विधियों में माध्यस्थम् के स्थान पहले से निश्चित होते हैं । रैडफर्न और हंटर द्वारा लिखित इंटरनेशनल अंतरराष्ट्रीय माध्यस्थम् (पांचवां संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड/न्यूयॉर्क, 2009) के पैरा 3.54 में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि माध्यस्थम् का स्थान उसकी संपूर्ण कार्रवाई की गुरुता के महत्व का केंद्र होता है ।"

65. यह सत्य है कि यह आवश्यक नहीं कि जो बात अंतरराष्ट्रीय

माध्यस्थम् से संबंधित विधि के मामले में लागू होती हो वही घरेलू माध्यस्थम् के मामलों में भी लागू हो और ससम्मान हम यह कहना चाहेंगे कि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में इन दोनों बातों के मध्य विभेद पर विचार न किया गया ।

66. **रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड** बनाम **यूनियन ऑफ इंडिया**[1] और **हार्मनी इनोवेशन शिपिंग लिमिटेड** बनाम **गुप्ता कोल इंडिया लिमिटेड**[2] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों से भी यह स्पष्ट है कि वह नियम जिसके आधार पर **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दी गई इतरोक्ति को प्रतिपादित किया गया, अंतरराष्ट्रीय विधि का नियम है । **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 14 और 15, विशेष रूप से रैडफर्न और हंटर द्वारा लिखित पुस्तक के उद्धरण जिसको **एटजन बल्क ए./एस.** बनाम **आशापुरा माइनकैप लिमिटेड**[3] वाले मामले में दिए गए निर्णय में उद्धृत किया गया, से यह स्पष्ट है कि ये सिद्धांत अंतरराष्ट्रीय विधि में लागू होते हैं – पक्ष माध्यस्थम् के लिए किसी विशिष्ट स्थान का चयन करते हैं और यही वह मनमानी है जो आकर्षित करती है । **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 14 और 15 को नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "14. रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड **बनाम** यूनियन ऑफ इंडिया ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 3218 वाले मामले में विधि के इस कथन को अनेक पैरा में निर्दिष्ट किया गया । यह निर्णय इस बात को स्पष्ट करता है कि "न्यायिक कार्यकलाप का स्थान" और कुछ नहीं बल्कि माध्यस्थम् का "विधिक स्थान" है । इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि चूंकि माध्यस्थम् का विधिक स्थान लंदन था, इसलिए मात्र इंग्लिस न्यायालयों को ही माध्यस्थम् की कार्यवाहियों के संबंध में अधिकारिता प्राप्त होगी और इसलिए भारतीय विधि के भाग-1 को विवर्जित कर दिया गया । (देखें पैरा 36, 41, 45 से 60 और 76.1 और 76.2) इस निर्णय का अवलंब

---

[1] (2014) 7 एस. सी. सी. 603 = ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 3218.

[2] (2015) 9 एस. सी. सी. 172 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 1504.

[3] (2016) 11 एस. सी. सी. 508 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 2438.

हार्मनी इनोवेशन शिपिंग लिमिटेड **बनाम** गुप्ता कोल इंडिया लिमिटेड ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 1504 वाले मामले में लिया गया, (देखें पैरा 45 और 48)। भारत संघ **बनाम** रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने समस्त पूर्ववर्ती निर्णयों को निर्दिष्ट किया और अभिनिर्धारित किया कि ऐसे मामलों, जहां माध्यस्थम् का स्थान लंदन है, 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम के भाग-1 को आवश्यक विवशा द्वारा विवर्जित कर दिया जाएगा, चूंकि माध्यस्थम् पर न्यायालयों की पर्यवेक्षणीय अधिकारिता "माध्यस्थम् के स्थान" के साथ संलग्न होती है ।

15. एटजन बल्क ए./एस. **बनाम** आशापुरा माइनकैप लिमिटेड ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 2438 वाले मामले में दिए गए नवींतम निर्णय में उपरोक्त समस्त निर्णयज विधियों को निर्दिष्ट किया गया और उनका अनुसरण किया गया । इस निर्णय का पैरा 34 निम्नलिखित है –

> "34. वास्तविकता यह है कि माध्यस्थम् के विधिक स्थान के चयन मात्र से ही उस स्थान पर लागू विधि आकर्षित हो जाती है । अन्य शब्दों में यह विनिर्दिष्ट किया जाना आवश्यक होगा कि माध्यस्थम् कार्यवाहियों पर कौन सी विधि लागू होगी, चूंकि किसी विशिष्ट देश की विधि विधित: लागू होगी । रैडफर्न और हंटर द्वारा अंतरराष्ट्रीय माध्यस्थम् पर लिखित पुस्तक में निम्नलिखित लेखांश में इस विवाद्यक पर निम्नलिखित व्याख्या समाविष्ट है –"
>
>> "कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि पक्षों ने किसी विशेष देश में माध्यस्थम् के लिए उपबंधित किए जाने के द्वारा केवल प्रक्रियात्मक विधि का चयन किया है जो उनके मध्य होने वाले माध्यस्थम् पर लागू होगी । यह अत्यधिक कठिनाई उत्पन्न करने वाली बात है चूंकि एक इंग्लिश न्यायालय ने ही **ब्रिस ऑफ डाऊन विंड फार्म** वाले मामले में दिए गए अपने नवींतम निर्णय में अभिनिर्धारित किया है कि यह स्थिति सदैव ही लागू

नहीं होती । पक्षों ने किसी विशिष्ट देश में माध्यस्थम् का स्थान चुना है । इस चुनाव के साथ उस देश के माध्यस्थम् की विधि के आज्ञापक उपबंधों को सम्मिलित करते हुए उस देश की विधियों के प्रति स्वयं को समर्पित करने की रुचि भी संलग्न है । यह कहना कि पक्षों ने माध्यस्थम् पर लागू होने के प्रयोजनार्थ उस विशिष्ट विधि को 'चुना' है, यह कहने की भांति है कि कोई इंग्लिश महिला जो अपनी कार फ्रांस ले जाती है, ने फ्रांस की यातायात विधियों को 'चुना' है जो उसको सड़क के दाहिनी ओर कार चलाने और दाहिनी ओर से आने वाले वाहनों को पूर्विकता प्रदान करने के लिए बाध्य करेंगी और उसको सामान्यतया यातायात की उन विधियों का पालन करने के लिए बाध्य करेंगी जिनसे वह परिचित नहीं हैं । किंतु यह कहना भाषा का कठोर प्रयोग होगा कि इस काल्पनिक मोटर चालक वाहन ने 'फ्रांस की यातायात विधियों' के विकल्प को चुना था । उसने जो किया है, वह फ्रांस जाने का चुनाव है । अत: फ्रांस की विधियां उसके ऊपर स्वमेव ही लागू हो जाती हैं । यह कोई चुनाव करने का विषय नहीं है ।

पक्ष माध्यस्थम् के प्रयोजनार्थ किसी विशिष्ट स्थान का चुनाव कर सके हैं क्योंकि उस स्थान पर माध्यस्थम् किए जाने को वे सुविधाजनक पाते हैं । फिर भी यदि माध्यस्थम् के किसी स्थान का चुनाव कर लिया गया है, तो इस चुनाव के साथ उस स्थान की विधियां भी लागू हो जाती हैं । यदि उन विधियों में ऐसे उपबंध समाविष्ट हैं जो आज्ञापक प्रकृति के हैं, जहां तक माध्यस्थम् का संबंध है, तो उन उपबंधों का पालन किया जाना चाहिए । यह कोई चुनाव का विषय नहीं है और इसलिए वह काल्पनिक मोटरवाहन चालक इस बात का चुनाव करने के लिए स्वतंत्र नहीं है कि उसको किस स्थानीय यातायात विधि का पालन करना है और किस स्थानीय

यातायात विधि का पालन नहीं करना है ।"

67. जब दो भारतीय पक्ष किसी माध्यस्थम् करार, जिसमें माध्यस्थम् निदेश का स्थान भारत में स्थित है, में प्रविष्ट होते हैं, तो ऐसे स्थान का चुनाव माध्यस्थम् के संचालन पर कोई प्रभाव नहीं रखता चूंकि माध्यस्थम् विधि संपूर्ण देश में समान है । अतः यदि लंदन का कोई पक्ष कोलकाता के किसी पक्ष के साथ माध्यस्थम् करार में प्रविष्ट होता है और उनके मध्य माध्यस्थम् करार यह उपबंधित करता है कि माध्यस्थम् निदेश का स्थान जेनेवा होगा, तो जब तक कि माध्यस्थम् करार इसके विपरीत किसी अन्य बात को भी विनिर्दिष्ट नहीं करता, उस करार से यही आशय निकाला जाएगा कि माध्यस्थम् निदेश का संचालन और उस निदेश का परिणाम स्विस विधि द्वारा शासित होगा । यदि मुंबई का कोई पक्ष कोलकाता के किसी अन्य पक्ष के साथ माध्यस्थम् करार में प्रविष्ट होता है जिसमें यह उपबंधित है कि माध्यस्थम् निदेश का स्थान दिल्ली होगा, तो यही बात किन्हीं अपरिहार्य कारणोंवश नहीं कही जा सकती । माध्यस्थम् के न्यायिक स्थान की संकल्पना किसी घरेलू माध्यस्थम् के मामले में असुसंगत है चूंकि माध्यस्थम् विधि एक ही देश के भीतर माध्यस्थम् का स्थान एक स्थान से दूसरे स्थान को परिवर्तित हो जाने पर परिवर्तित नहीं होती ।

68. इस पहलू पर **भारत एल्युमिनियम कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई चर्चा, विशेष रूप से अधिनियम की धारा 2(1)(ङ) के संदर्भ में, इस मामले में अंतर्वलित विवाद्यकों के संबंध में सुसंगत नहीं है और **बालकों** (उपरोक्त) वाले मामले में पारित निर्णय के पैरा 96 के अंत में निकाले गए निष्कर्ष को उस निर्णय का निर्णीतानुसरण या संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि नहीं माना जा सकता ।

69. जैसा कि इस निर्णय में पहले भी उल्लेख किया गया है, **गुरनाम कौर** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस बात पर जोर दिया था कि "विधि के रूप में उद्धृत किया जाना किसी भी मामले के सिद्धांतों पर उस मामले के निर्णीतानुसरण के रूप में लागू होता है" और "वे कथन जो

निर्णीतानुसरण के भाग नहीं है, को इतरोक्ति के रूप में विभेदित किया जाता है और वे प्राधिकारवान कथन नहीं होते हैं" । इन कथनों के प्रकाश में **भारत एल्युमिनियम कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 96 में दिया गया उदाहरण और कुछ पश्चात्वर्ती पैरा में इस पहलू पर निकाला गया निष्कर्ष, जो इस निर्णय के निर्णीतानुसरण के भाग नहीं हैं, को प्राधिकारवान या बाध्यकारी महत्व का कथन नहीं माना जा सकता । **सालमंड ऑन ज्यूरिसप्रूडेंस** (बारहवां संस्करण) के एक लेखांश को **गुरनाम कौर** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है । इस उद्धरण को इस निर्णय में पहले भी उद्धृत किया जा चुका है जिसमें यह वर्णित करते हुए कि जब कोई विनिश्चय चुप्पी के तहत पारित किया जाता है तो यह मताभिव्यक्ति की जाती है कि यद्यपि कोई न्यायालय किसी पक्ष के पक्ष में बिंदु 'क' के कारण जागरूकतापूर्वक निर्णय पारित कर रहा है, यह दर्शित किया जाता है कि न्यायालय को किसी विशेष पक्ष के पक्ष में निर्णय पारित नहीं करना चाहिए जब तक कि उसने उसी पक्ष में बिंदु 'ख' पर निर्णय पारित नहीं कर दिया ; "किंतु बिंदु 'ख' पर बहस नहीं की गई थी या न्यायालय द्वारा उस विचार नहीं किया गया था" । ऐसी स्थिति में **गुरनाम कौर** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय में यह मताभिव्यक्ति की गई कि "यद्यपि मामले के तथ्यों में बिंदु 'ख' तर्कसंगत रूप से अंतर्वलित था, ... फिर भी वह विनिश्चय बिंदु 'ख' पर निर्णयज विधि नहीं है । यह कहा जा सकता है बिंदु 'ख' पर दिया गया निर्णय खामोशी के साथ दिया गया निर्णय हैं" और **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में भी इसी पहलू पर निर्णय दिया गया है कि क्या पदनामित न्यायालय को किसी कार्यवाही को विचारार्थ प्राप्त करने का विधि की दृष्टि में प्राधिकार अन्यथा रूप से प्राप्त था । यह स्पष्ट है कि न केवल **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया निर्णय और आक्षेपित आदेश यह अभिनिर्धारित करते हैं कि वादकरण का कोई भी भाग मुंबई में उद्भूत नहीं हुआ, बल्कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष भी यह दलील बारंबार दी गई । तथापि, मामलों को निर्णीत करते हुए ऐसा प्रतीत नहीं होता कि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय में इस विवाद्यक को संबोधित किया गया । वास्तव में **इंडस**

मोबाइल (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 20 के आरंभिक वाक्य में समुचित विधिक सिद्धांत का उल्लेख किया गया है और यह अभिकथित किया गया है कि जहां एक से अधिक न्यायालयों को अधिकारिता प्राप्त होती है, तो पक्षों को यह अधिकार होता है कि वे किसी एक न्यायालय का चुनाव कर ले और अन्य अदालतों को विवर्जित कर दे । तथापि, यह निर्णय इस विवाद्यक को संबोधित नहीं करता कि क्या मुंबई स्थित किसी न्यायालय को किसी भी प्रकार से अधिकारिता प्राप्त है ।

70. उच्चतम न्यायालय द्वारा **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रतिपादित नियम को तब जब यह नियम प्रथम बार प्रतिपादित किया गया था, से चार दशकों के दौरान बारंबार दोहराया गया है । इस नियम को 1940 और 1996 के अधिनियमों, दोनों ही की पृष्ठभूमि में संचालित माध्यस्थम् मामलों के प्रयोजनार्थ उत्तम विधि अभिनिर्धारित किया गया है चूंकि इस मामले में अंतर्वलित विधिक विवाद्यक के प्रयोजनार्थ 1940 के अधिनियम की धारा 2(ग) का तात्विक भाग 2015 के संशोधन पूर्व वाले 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ङ) के सदृश्य है और इससे 2015 के संशोधन के पश्चात् 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ङ) स्थिति परिवर्तित नहीं होती । यद्यपि 1996 के अधिनियम के संदर्भ में नहीं, फिर भी **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में पारित निर्णय का अनुमोदन **हानिलएरा टेक्सटाइल्स लिमिटेड** बनाम **पुरोमेटिक्स फिल्टर्स (प्रा.) लिमिटेड**[1] वाले मामले के पैरा 7 में किया गया :–

> "7. ... हकम सिंह **बनाम** गैमन (इंडिया) लिमिटेड (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि पक्षों को यह अधिकार नहीं है कि वे करार द्वारा किसी ऐसे न्यायालय को अधिकारिता प्रदान करे जिसको संहिता के अंतर्गत वह अधिकारिता प्राप्त नहीं है । किंतु सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत जहां दो या दो से अधिक न्यायालयों को किसी वाद या कार्यवाही पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त होती है, तो ऐसी स्थिति में पक्षों के मध्य इस बाबत कोई करार कि उनके मध्य विवाद होने पर उनमें

---

[1] (2004) 4 एस. सी. सी. 671 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 2432.

से किसी न्यायालय द्‌वारा विचार किया जाएगा, लोक नीति के विरुद्ध नहीं है । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि इस प्रकार का करार संविदा अधिनियम की धारा 28 का अतिलंघन नहीं करता ।"

71. 1940 के माध्यस्थम् अधिनियम के अंतर्गत लंबित एक मामले में **राजस्थान एस. ई. बी.** बनाम **यूनिवर्सल पेट्रोकेमिकल्स**[1] वाले मामले में पारित किए गए निर्णय में यह मताभिव्यक्ति की गई :–

"संहिता की धारा 20 माध्यस्थम् से संबंधित मामले में किसी न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता से संबंधित विवाद्‌यक को निर्णीत किए जाने के प्रयोजनार्थ भी लागू होगी, चूंकि **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अधिनियम के अंतर्गत किसी पंचाट को फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ कार्यवाही पर विचार करने की न्यायालय की अधिकारिता संहिता की उपबंधों द्‌वारा शासित होगी ।"

72. **बी. ई. साइमोज वान स्टैराबर्ग नीदेनथाल** बनाम **छत्तीसगढ़ इनवेस्टमेंट लिमिटेड**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस बात पर जोर दिए जाने के प्रयोजनार्थ एक अन्य निर्णय के लेखांश को उद्धृत किया कि किसी फोरम चयन खंड को विधिमान्य और प्रवर्तनीय होने के लिए निम्नलिखित परीक्षणों का सामना करना होगा : एक ऐसा स्थान होना चाहिए जिसकी भलीभांति पहचान की जा चुकी हो और उस स्थान पर किसी न्यायालय को कार्रवाई प्राप्त करने का प्राधिकार होना चाहिए । निम्नलिखित लेखांश सुसंगत है :–

"10. मुख्य निर्णय **स्वास्तिक गैसेस प्राइवेट लिमिटेड** [(2013) 9 एस. सी. सी. 32] वाले मामले में हममें से एक (न्यायमूर्ति आर. एम. लोढ़ा, जो उस समय इस न्यायालय के न्यायाधीश थे) ने हकम सिंह **बनाम** गैमन (इंडिया) लिमिटेड (उपरोक्त), ग्लोब ट्रांसपोर्ट **बनाम** त्रिवेणी इंजीनियरिंग वर्कस [(1983) 4 एस. सी. सी. 707], एंजील इन्सुलेशन **बनाम** डैवी एसमोड़ इंडिया लिमिटेड [(1995) 4 एस. सी. सी. 153 = ए. आई. आर. 1995 एस. सी.

[1] (2009) 3 एस. सी. सी. 107 = 2009 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 607.

[2] (2015) 12 एस. सी. सी. 225.

1766], न्यू मोगा ट्रांसपोर्ट कंपनी **बनाम** यूनाइटेड इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड [(2004) 4 एस. सी. सी. 677 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 2154], श्री शुभलक्ष्मी फैब्रिक्स (प्राइवेट) लिमिटेड **बनाम** चांदमल बारादिया [(2005) 10 एस. सी. सी. 704 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 2161], राजस्थान एस. ई. डी. **बनाम** यूनिवर्सल पेट्रोकेमिकल्स (उपरोक्त), बालाजी कोक इंडस्ट्रीज (प्राइवेट) लिमिटेड **बनाम** मां भगवती कोक गुजरात (प्राइवेट) लिमिटेड [(2009) 9 एस. सी. सी. 403 = 2009 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5751] और ए. बी. एल. सेल्स कारपोरेशन **बनाम** अनुराधा केमिकल्स (प्राइवेट) लिमिटेड [(2012) 2 एस. सी. सी. 315 = 2012 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1028] वाले मामलों में इस न्यायालय द्वारा पारित पूर्ववर्ती विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया और निर्णय के पैरा 32 में विधिक स्थिति को अधिकथित किया, जो इस प्रकार है –

> "32. ... यह एक तथ्य है कि करार में अधिकारिता खंड उपबंधित किए जाते समय शब्द जैसे कि 'अकेले', 'केवल', 'अनन्य रूप से' या 'अनन्य अधिकारिता' का प्रयोग नहीं किया गया है किंतु हमारे विचार में यह निश्चायक नहीं है और इससे तात्विक रूप से कोई अंतर नहीं पड़ता । पक्षों का आशय – करार में खंड 18 के समाविष्ट होने पर स्पष्ट और असंदिग्ध है कि कोलकाता के न्यायालयों को अधिकारिता प्राप्त होगी जिसका अर्थ यह है कि केवल कोलकाता के न्यायालयों को अधिकारिता प्राप्त होगी । ऐसा इस कारणवश है कि अधिकारिता खंड के प्रारुपण के लिए, जैसे कि वर्तमान करार में खंड 18 में सूत्र संघ की उच्च अभिव्यक्ति का बहिष्कार (Expressio unious est exclusio alteriou) - वाला सिद्धांत प्रभावी होगा चूंकि इसके विरुद्ध उपदर्शित करने के लिए कुछ भी नहीं है । इस विधिक सिद्धांत का अर्थ यह है कि किसी एक की अभिव्यक्ति दूसरे का बहिष्कार है । इस बाबत कोई उपबंध अधिनियमित किए जाने के द्वारा कि करार कोलकाता के न्यायालयों की अधिकारिता के अध्यधीन

है, पक्षों ने विवशित रूप से अन्य न्यायालयों की अधिकारिता को विवर्जित कर दिया । जहां संविदा किसी विशिष्ट स्थान के संबंध में न्यायालयों की अधिकारिता को विनिर्दिष्ट रूप से वर्णित करती है और उन न्यायालयों को विचार करने की अधिकारिता प्राप्त है, तो हम यह समझते हैं कि यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पक्षों का आशय दोनों ही न्यायालयों की अधिकारिता का विवर्जित करने का था । इस प्रकार का कोई भी खंड संविदा अधिनियम की धारा 23 द्वारा किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं होता । यह खंड न तो विधि द्वारा वर्जित है और न ही लोक नीति के विरुद्ध है । यह खंड संविदा अधिनियम की धारा 28 का किसी भी प्रकार से उल्लंघन नहीं करता ।"

(रेखांकित भाग का अवलंब लिया गया)

73. विधिक स्थिति और **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में किए गए निर्णय का महत्व **हर्षद चीमनलाल मोदी** बनाम **डी. एल. एफ. यूनिवर्सल लिमिटेड**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय में विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया गया है :–

"21. संहिता की धारा 20 को स्पष्ट रूप से पढ़े जाने पर इस बाबत कोई संदेह शेष नहीं रह जाता कि यह उपबंध एक अवशिष्ट उपबंध है और उन मामलों को आच्छादित करता है जो धारा 15 से 19 द्वारा अधिरोपित परिसीमाओं के अंतर्गत नहीं आते । इस धारा के आरंभिक शब्द 'पूर्वोक्त परिसीमाओं के अध्यधीन रहते हुए' महत्वपूर्ण हैं और इस बात को पूर्णतया स्पष्ट करते हैं कि इस धारा की परिधि के अंतर्गत समस्त व्यक्तिगत कार्यवाहियां हैं । अत:, धारा 20 के अंतर्गत फाइल किया गया कोई भी वाद किसी ऐसे न्यायालय में संस्थित किया जा सकता है जिसकी अधिकारिता के भीतर प्रतिवादी निवास करता है या कारबार करता है या लाभ के लिए व्यक्तिगत रूप से कार्य करता है या पूर्णत: या भागत: वाद कारण उद्भूत होता है ।

[1] (2005) 7 एस. सी. सी. 791.

22. यह नि:संदेह रूप से सत्य है जैसाकि श्री मल्होत्रा द्वारा निवेदन किया गया है कि जहां दो या दो से अधिक न्यायालय न्यायालयों को किसी वाद पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त होती है, दोनों पक्ष करार द्वारा अन्य न्यायालय या न्यायालयों के अपवर्जन में एक न्यायालय की अधिकारिता को स्वीकार कर सकते हैं । यह करार 1872 के संविदा अधिनियम की धारा 28 द्वारा प्रभावित नहीं होता और न ही ऐसे किसी करार को लोक नीति के विरुद्ध माना जा सकता है । यह एक विधिक विधिमान्य और प्रवर्तनीय करार होता है ।

23. पूर्व में 30 वर्ष से भी पूर्व इसी प्रकार का एक प्रश्न **हकम सिंह** बनाम **गैमन (इंडिया) लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में विचारार्थ उद्भूत हुआ । इस मामले में दिया गया विनिश्चय इस न्यायालय द्वारा इस बिंदु पर दिया गया प्रथम महत्वपूर्ण विनिश्चय था । इस मामले में पक्षों के मध्य विनिर्माण के कार्य हेतु एक संविदा निष्पादित हुई थी । इस करार में यह उपबंधित किया गया था कि अन्य बातों के होते हुए भी जहां कार्य निष्पादित किया जाना था, करार के बाबत यह प्रतीत किया जाएगा कि 'यह करार मुंबई में किया गया है' और मुंबई न्यायालयों को ही पक्षों के मध्य किसी विवाद का 'न्याय निर्णयन करने की अधिकारिता प्राप्त होगी' । इस न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या केवल मुंबई स्थित न्यायालय को विवाद का समाधान करने की अधिकारिता प्राप्त है ।

24. इस न्यायालय ने इस दलील को मान्य ठहराते हुए और संहिता और साथ ही संविदा अधिनियम के उपबंधों पर विचार करते हुए यह अभिकथित किया –

> "करार के खंड 13 द्वारा पक्षों के मध्य इस बात को अभिव्यक्त रूप से अनुध्यात किया गया था कि संविदा को संबद्ध पक्षों के मध्य बम्बई में किया जाना प्रतीत किया जाएगा । किसी भी परिस्थिति में चूंकि प्रत्यर्थियों का प्रमुख कार्यालय बम्बई में स्थित है और वे निविदा की शर्तों के अंतर्गत उद्भूत वाद कारण, जिसके बाबत वाद मुंबई के

न्यायालयों में फाइल किया जाना था, के संबंध में दायी थे । पक्षों को यह अधिकार नहीं है कि वे करार द्‌वारा किसी ऐसे न्यायालय को अधिकारिता प्रदान करें जिसको संहिता के अंतर्गत अधिकारिता प्राप्त नहीं है । किंतु जहां दो या दो से अधिक न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत किसी वाद या कार्यवाही पर विचार करने की अधिकारिता रखते हैं, तो उन पक्षों के मध्य इस बाबत करार कि उनके मध्य विवाद पर उन न्यायालयों द्‌वारा विचार किया जाएगा, लोक नीति के विरुद्ध नहीं है । इस प्रकार का कोई भी करार संविदा अधिनियम की धारा 28 का अतिलंघन नहीं करता ।"

25. **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले का अनुसरण किया गया और उस मामले में अधिकथित सिद्धांतों को पश्चात्वर्ती अनेक मामलों में दोहराया गया । (ग्लोग ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन **बनाम** त्रिवेणी इंजीनियरिंग वर्क्स (उपरोक्त), ए. बी. सी. लेमिनार्ट (प्राइवेट) लिमिटेड **बनाम** ए. पी. एजेंसीज (उपरोक्त), पटेल रोडवेज लिमिटेड **बनाम** प्रसाद ट्रेडिंग कंपनी (उपरोक्त), आर. एस. डी. वी. फाइनेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्री वल्लभ ग्लास वर्क्स लिमिटेड (उपरोक्त), एंजिल इंसुलेशनस **बनाम** डेवी एशमोर इंडिया लिमिटेड (उपरोक्त), श्री राम सिटी यूनियन फाइनेंस कारपोरेशन लिमिटेड **बनाम** रमा मिश्रा (उपरोक्त) और न्यू मोगा ट्रांसपोर्ट कंपनी **बनाम** यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंश कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) वाले मामले ।"

74. माननीय उच्चतम न्यायालय ने इसी दृष्टिकोण को बनाए रखते हुए **न्यूमोगा ट्रांसपोर्ट कंपनी** बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंश कंपनी लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए अपने निर्णय में दोहराया कि किसी फोरम चयन खंड के संबंध में संपूर्ण नियम मात्र यह नहीं होता कि दोनों पक्ष फोरम के उनके चयन द्‌वारा बाध्य हैं, किंतु यह भी स्पष्ट किया कि वे इस प्रकार से केवल तब बाध्य हैं जब उनकी पसंद के फोरम को पक्षों के मध्य हुए करार के संबंध में किसी कार्रवाई को प्राप्त करने की अधिकारिता विधि के अंतर्गत प्राप्त है । यह रिपोर्ट के निम्नलिखित पैरा से स्पष्ट है :–

"14. विनिश्चयों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि जहां दो या दो अधिक न्यायालयों को सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत किसी वाद या कार्यवाही पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त है, तो उन पक्षों के मध्य इस बाबत करार कि उनके मध्य किसी विवाद पर उस न्यायालय द्वारा विचार किया जाएगा, लोक नीति के विरुद्ध नहीं हैं और इससे 1872 के संविदा अधिनियत की धारा 28 का अतिलंघन नहीं होता । इसलिए, यदि किसी मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए एक से अधिक न्यायालयों को अधिकारिता प्राप्त होती है तो दोनों पक्ष सहमति द्वारा अधिकारिता को दोनों में से वही एक न्यायालय तक सीमित कर सकते हैं । किंतु पक्षों के मध्य करार द्वारा किसी ऐसे न्यायालय को अधिकारिता प्रदान नहीं की जा सकती जिसको मामले पर विचार करने की अधिकारिता अन्यथा रूप से प्राप्त नहीं होती । [देखें हकम सिंह **बनाम** गैमन (इंडिया) लिमिटेड और श्री राम सिटी यूनियन फाइनेंस कारपोरेशन लिमिटेड **बनाम** रमा मिश्रा (उपरोक्त) वाले मामले] ।

15. पूर्वोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए हमारे समक्ष उपस्थित मामले के तथ्यों पर विचार किया जाना चाहिए ।

16. हम इससे वर्तमान में संबद्ध नहीं हैं, कि यदि प्रेषित माल के टिप्पण में इस बात को उपदर्शित कर दिया गया होता कि मुख्यालय वाले नगर के न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त है, तो स्थान के संक्षिप्त संकेत की अनुपस्थिति में क्या परिणाम होते, विशेष रूप से तब जब प्रेषित माल के टिप्पण में इस बात को उपदर्शित कर दिया गया था कि केवल उदयपुर स्थित न्यायालय को ही अधिकारिता प्राप्त है ।

17. जैसाकि इस न्यायालय द्वारा **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले को निर्दिष्ट करते हुए, पहले ही मताभिव्यक्ति की जा चुकी है, न्यायालयों की अधिकारिता को प्रभावित किए जाने के प्रयोज्यनार्थ किया गया करार अविधिमान्य नहीं होता । पक्षों को यह अधिकार होता है कि वे दो सक्षम न्यायालयों में से किसी एक सक्षम न्यायालय का चयन विवादों को निर्णीत किए जाने के

प्रयोजनार्थ कर लें । जब एक बार दोनों पक्ष स्वयं को इस प्रकार के करार द्वारा बाध्य कर लेते हैं, तो उनको यह अधिकार नहीं होता कि वे किसी भिन्न अधिकारिता का चयन कर सकें ।

18. उपरोक्त तथ्यात्मक और विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए अपरिहार्य रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि उच्च न्यायालय प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा पारित आदेश में व्यवधान उत्पन्न करने में न्यायसंगत नहीं था । यह ऐसा मामला नहीं है जहां चुने गए न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त नहीं होती । इसलिए, जो एकमात्र प्रश्न उद्भूत होता है वह अन्य न्यायालयों के अपवर्जन से संबंधित है ।"

75. यद्यपि, इस बात पर संदेह किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है कि **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित नियम 1996 के अधिनियम द्वारा शासित स्थिति पर लागू नहीं होता । चूंकि धारा 2(1)(ङ)(i) [धारा 2(1)(ङ) के 2015 में संशोधन के पूर्व भी विधिक स्थिति कतई भिन्न नहीं थी और इससे संहिता के सुसंगत उपबंधों (या उच्च न्यायालय के मामले में उसके लेटर्स पेटेंट के सुसंगत उपबंधों) को निर्विवाद रूप से बल मिलता है)], **बालाजी कोक इंडस्ट्री (प्राइवेट) लिमिटेड** बनाम **मां भगवती कोक गुजरात (प्राइवेट) लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के निम्नलिखित लेखांश पर विचार किया जा सकता है :–

"24. जो एकमात्र प्रश्न हमारे द्वारा विचारार्थ उद्भूत होता है, यह है कि क्या प्रत्यर्थी कंपनी को कोलकाता की अधिकारिता के अध्यधीन रहते हुए समुद्री रास्ते से विक्रय के लिए करार किए जाने के प्रयोजनार्थ पारस्परिक सहमति से किए गए करार के बाद भी यह दलील देने का अधिकार है कि यद्यपि वादकरण का एक भाग तात्पर्यित रूप से भावनगर न्यायालय के अधिकारिता के अंतर्गत उद्भूत हुआ, फिर भी भावनगर (गुजरात) के प्रमुख सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ वर्ग) के समक्ष 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 8 के अधीन फाइल किया गया आवेदन पोषणीय होगा ।

25. पूर्वोक्त प्रश्न बहुधा न्यायालयों को परेशान करता रहा है

जिसका कारण यह है कि एक विचार तो यह व्यक्त किया जाता है कि चूंकि करार के पक्ष किसी विशिष्ट फोरम के संबंध में सहमत थे, अत: वे उक्त स्थिति से इनकार नहीं कर सकते और यह दावा नहीं कर सकते कि अन्य न्यायालयों, जहां वादकरण का एक भाग उद्भूत हो चुका है, को भी उस वाद या अन्य कार्यवाही पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त होगी । अन्य विचार यह व्यक्त किया जाता रहा है कि यदि उक्त करार द्वारा किसी न्यायालय की अधिकारिता के अधिकार को समाप्त किए जाने की ईप्सा की गई है और किसी अन्य न्यायालय, जिसको वाद पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं है, को विचार करने की अधिकारिता प्रदान कर दी गई है, तो यह लोक नीति के विरुद्ध होने के कारण 1872 के संविदा अधिनियम की धारा 28 के उपबंधों के विपरीत होगा । इस न्यायालय द्वारा इस विरोधाभास पर दिया गया पूर्ववर्ती निर्णय **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया निर्णय है ।

26. इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि क्या दो पक्षों के मध्य इस बाबत किया गया कोई करार कि दो में से एक न्यायालय, जिसको अधिकारिता प्राप्त है, किसी करार से संबंधित समस्त विवादों का निर्णय करेगा, 1872 के संविदा अधिनियम की धारा 28 के उपबंधों द्वारा प्रभावित है, इस न्यायालय ने **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया कि जहां दो या दो से अधिक न्यायालयों को सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन किसी वाद या कार्यवाही पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त होती है, तो दोनों पक्षों के मध्य इस बाबत कोई करार कि दोनों में से एक न्यायालय को उस करार के पक्षों के मध्य उद्भूत होने वाले समस्त विवादों को निर्णीत करने की अधिकारिता प्राप्त होगी, लोक नीति के विरुद्ध नहीं होगा और इसलिए 1872 के संविदा अधिनियम की धारा 28 के उपबंधों के विपरीत नहीं होगा ।

27. यही प्रश्न **ए. बी. सी. लैमिनार्ट (प्राइवेट) लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में एक बार पुन: उद्भूत हुआ जिसमें **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए विनिश्चय का अनुसरण करते हुए किंतु 'वाद का अधिकार कपट से उत्पन्न नहीं होता (Ex dolo malo non-orditor ectio)' वाले सिद्धांत का अवलंब लेते हुए

अभिनिर्धारित किया गया कि कोई करार जो किसी मामले को निर्णीत करने की अधिकारिता रखने वाले किसी न्यायालय की अधिकारिता को पूर्णतः समाप्त कर देता है, संविदा अधिनियम की धारा 28 के अधीन लोक नीति के विरुद्ध होने के कारण विधि विरुद्ध और शून्य होगा । किंतु जब तक किसी संविदा के दोनों पक्ष सभी न्यायालयों, जिनको विधि के अंतर्गत किसी वादकरण को निर्णीत करने की अन्यथा रूप से अधिकारिता प्राप्त है, की अधिकारिता को समाप्त नहीं कर देते, यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों पक्षों ने संविदा द्वारा न्यायालय की अधिकारिता को समाप्त कर दिया है ।"

76. इस संदर्भ में इस बात को भी अभिलिखित किया जाना चाहिए कि ऊपर उद्धृत अनेक विनिश्चय, जिनमें उच्चतम न्यायालय द्वारा **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित नियम का अनुसरण किया गया है, को दोनों पक्षों द्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया । तथापि, पक्षों, विशेष रूप से अपीलार्थियों का ध्यान उन निर्णयज विधियों की ओर आकर्षित किया गया जिनको इस निर्णय की उद्घोषणा के मात्र एक दिन पहले अपीलार्थियों को इन निर्णयज विधियों पर विचार करने का अवसर प्रदान करते हुए, यदि वे उस अवसर का लाभ उठाना चाहते थे, निर्दिष्ट किया गया था । अपीलार्थियों को उद्धृत की गई इन निर्णयज विधियों के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है और उन्होंने उनके विरुद्ध किसी अन्य निर्णय को उद्धृत नहीं किया । अब जो कार्य किया जाना शेष रह गया है, **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में दी गई इतरोक्ति को लागू किया जाना है, जिसके साथ **हकम सिंह** (उपरोक्त) और अनेक अन्य मामलों में अधिकथित नियम द्वारा असहमति व्यक्त की गई है ।

77. इस मामले में जो कार्रवाई की जानी शेष रह गई वह यह है कि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले की इतिरोक्ती को लागू किया जाना है जैसा कि **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय द्वारा इस मामले में निर्दिष्ट किए गए अनेक मामलों के विरुद्ध योजित किया गया है ।

78. अनेक मामलों में अपीलार्थियों की शिकायत यह है कि अधिनियम की धारा 9 के अधीन फाइल की गई याचिकाओं को माध्यस्थम् न्यायालय द्वारा प्रत्येक मामले में फाइल किए गए आक्षेपों

के बावजूद खारिज नहीं किया है ।

79. जैसाकि ऊपर दर्शित किया गया है, 2018 के ए. पी. ओ. सं. 26 ए. पी. ओ. सं. 27, ए. पी. ओ. सं. 39 और ए. पी. ओ. सं. 42 के तथ्य आपस में समान हैं और 2018 के ए. पी. ओ. सं. 37 और ए. पी. ओ. सं. 38 से संबंधित तथ्य अन्य याचिकाओं से भिन्न हैं । आवश्यक रूप से प्रथम चार मामलों में माध्यस्थम् निदेश के स्थान की रुचि को उपदर्शित करने वाले खंड समाविष्ट हैं किंतु उनमें कोई फोरम चयन खंड समाविष्ट नहीं है । अन्य दो मामलों में माध्यस्थम् निदेश के लिए स्थान की पसंद मुंबई को दर्शित किया गया है और फोरम चयन खंड भी मुंबई स्थित न्यायालयों के लिए उपबंधित करता है जहां करारों से उद्भूत होने वाले मामले प्राप्त किए जाएंगे । अत: यदि **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई इतरोक्ति को संपूर्ण रूप से और **हकम सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित अत्यधिक पुराने नियम में बिना कोई छेड़छाड़ किए इन छह मामलों में लागू किया जाता है, तो **इंडस मोबाइल** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत 2019 के ए. पी. ओ. सं. 26, ए. पी. ओ. सं. 27, ए. पी. ओ. सं. 39 और ए. पी. ओ. सं. 42 में लागू नहीं होगा किंतु 2018 के ए. पी. ओ. सं. 37 और 38 में पूर्णरूपेण लागू होगा ।

80. अब इस बात का उल्लेख किया जाना चाहिए कि अपीलार्थी किराएदार ने किसी भी मामले में लेटर्स पेटेंट के खंड 12 के अधीन प्रदान की गई इजाजत को समाप्त किए जाने के लिए कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया । इस न्यायालय की अधिकारिता के विरुद्ध आक्षेप का उल्लेख अपीलार्थियों द्वारा प्रतिरक्षा में फाइल किए गए शपथ-पत्र में किया गया । प्राय: किसी सिविल वाद के वादपत्र में समाविष्ट कथन सत्य प्रतीत किए जाते हैं यदि न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में किसी आक्षेप को उठाया जाता है । ऐसा इसलिए है क्योंकि क्षेत्रीय या धन संबंधी अधिकारिता के संबंध में आक्षेप संहिता की धारा 21 में मान्यता प्राप्त सिद्धांतों को दृष्टि में रखते हुए अधित्यजित किए जाने योग्य होते हैं और क्षेत्रीय या धन संबंधी अधिकारिता की कमी अधिकारिता की अंतर्निहित कमी नहीं होती । सामान्यत:, जब फाइल किए गए किसी वाद में न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता को चुनौती दी

जाती है, तो वह चुनौती वादपत्र को अस्वीकृत किए जाने के प्रयोजनार्थ याचिका या याचिका की ही भांति किसी अन्य आवेदन के माध्यम से फाइल की जाती है । यहां पर परीक्षण की विषयवस्तु यह है कि यदि वाद-पत्र को अर्थपूर्ण ढंग से पढ़े जाने पर यह पाया जाता है कि न्यायालय की अधिकारिता में कमी है, केवल तभी वादपत्र को अस्वीकृत किया जाएगा और इस प्रकार से पारित किया गया विनिश्चय पक्षों के मध्य विवाद के गुणागुण पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा ।

81. तथापि, 1996 के अधिनियम की धारा 9 के अधीन याचिका प्राप्त होने पर न्यायालय के प्राधिकार का निर्धारण पूर्णतया भिन्न विषय है चूंकि किसी वाद में फाइल किए गए वादपत्र की भांति 1996 के अधिनियम की धारा 9 के अधीन फाइल की गई याचिका मात्र एक अंतरवर्ती आवेदन होता है । पुनः, यदि अधिनियम की धारा 9 के अधीन फाइल की गई प्रत्येक याचिका, जिस पर विचार किए जाने की न्यायालय की अधिकारिता को चुनौती दी गई है, का विचारण साक्ष्य के आधार पर होना है, तो उस याचिका के पहले से निलंबित न्याय निर्णयन की प्रक्रिया और अधिक बाधित हो जाएगी । अतः अधिनियम की धारा 9 के अधीन याचिका प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालय की अधिकारिता को दी गई चुनौती का निर्धारण करते समय न्यायालय की शरण में जाने के लिए दृढ़तापूर्वक लिए गए आधारों पर सामान्य राय व्यक्त की जाती है ।

82. 1996 के अधिनियम की धारा 9 के अधीन फाइल की गई याचिका में सर्वप्रथम यह अभिवाक् किया जाना चाहिए कि पक्षों के मध्य मूल संविदा निष्पादित हुई थी या ऐसे किसी करार का निष्पादन इस न्यायालय की अधिकारिता के भीतर आने वाली वित्तीय कंपनी के कार्यालय में पूर्ण हुआ था । यद्यपि अपीलार्थी ऐसे किसी प्रकथन से यह प्रदर्शित किए जाने के द्वारा विचलन की ईप्सा रखते हैं कि स्टाम्प पेपर पश्चिमी बंगाल राज्य के बाहर से क्रय किया गया था और वित्तीय कंपनी का पता भी पश्चिमी बंगाल राज्य के बाहर का दर्शित किया गया है, प्रथम चार मामलों से संबंधित याचिकाओं को सपाट रूप से पढ़े जाने पर यह नहीं कहा जा सकता कि न्यायालय को लेटर्स पेटेंट के खंड 12 के अधीन अनुज्ञा प्रदान नहीं की जानी चाहिए थी । वास्तव में अधिकारिता से संबंधित आक्षेप के संबंध में यह देखा जाना चाहिए था

कि यह आक्षेप किराए पर लेने वालों द्वारा किया गया है जो सुसंगत करारों के अंतर्गत संदाय से संबंधित बाध्यताओं को पूर्ण कर पाने में विफल रहे थे ।

83. जहां तक दो मामलों, 2018 की ए. पी. ओ. सं. 37 और 38, का संबंध है, पक्षों ने सुनवाई के अंत में यह प्रकटीकरण किया है कि 2018 की ए. पी. ओ. सं. 38 में अंतर्वलित विवाद का निपटारा किया जा चुका है । अत: 2018 की ए. पी. ओ. सं. 37, जिसमें करार में फोरम चयन खंड और माध्यस्थम् निदेश के लिए स्थान की पसंद का भी खंड समाविष्ट है, पर विचारण किया जाना शेष है ।

84. यह संभव है कि किसी करार को शासित करने वाले फोरम चयन खंड और करार के किसी पक्ष द्वारा फोरम की रुचि को प्रभावित करने वाले खंड के होने के बावजूद कोई भी पक्ष उस न्यायालय की शरण में जा सकता है जिसको करार द्वारा नामित न किया गया हो । किसी सुसंगत पक्ष द्वारा की गई ऐसी कोई कार्रवाई केवल दो परिस्थितियों में घटित हो सकती है: जब संविदा के अन्य पक्ष न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में कोई आक्षेप नहीं करते; या जब फोरम चयन खंड प्रवर्तित किए जाने के योग्य न हो चूंकि न्यायालय की पसंद को 1996 की अधिनियम की धारा 2(1)(ङ)(i) सपठित संहिता की धारा 16 से 20 या लेटर्स पेटेंट के सुसंगत उपबंधों, जैसा भी मामला हो, के निबंधनों के अनुसार अन्यथा रूप से भी अधिकारिता के साथ नहीं जोड़ा गया है । तथापि, यदि किसी करार, जो फोरम चयन खंड द्वारा शासित है, के किसी पक्ष का यह विचार है कि फोरम चयन खंड प्रवर्तित किए जाने योग्य नहीं हैं या प्रवर्तित किए जाने के प्रयोजनार्थ कार्यान्वित किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि नामित न्यायालय को विधि के अधीन यह प्राधिकार नहीं है कि वह कोई कार्रवाई प्राप्त कर सके, याचिका या वाद-पत्र में यह बात स्पष्ट रूप से कही जानी चाहिए और इस बाबत कारण भी उपदर्शित किए जाने चाहिए कि नामित न्यायालय करार से उद्भूत होने वाली किसी कार्रवाई पर विचार करने के लिए विधि के अंतर्गत सक्षम होगा ।

85. 1996 के अधिनियम की धारा 9 के अधीन फाइल की गई याचिका जो 2018 की ए. पी. ओ. सं. 37 है, में याची वित्तीय कंपनी द्वारा फोरम चयन खंड के बारे में न्यायालय को सूचित करने या उसकी

सक्षमता के बारे में प्रकथन करने का कोई प्रयास नहीं किया गया । ऐसी परिस्थिति में, विशेष रूप से जब यह बात स्पष्ट है कि पक्षों के मध्य फाइल किए गए विवाद की विषयवस्तु पर आधारित कोई वाद नामित न्यायालय में फाइल किया गया है, न्यायालय फोरम चयन खंड की उपेक्षा में कोई कार्रवाई प्राप्त होने पर किसी भी कार्यवाही को करने में अग्रसर होने से विरत रहेगा और याचिका को नामित न्यायालय में फाइल किए जाने के लिए वापस कर देगा, परंतु यह तब जबकि इस संबंध में कोई आक्षेप किया गया हो ।

86. पूर्वोक्त कारणोंवश 2018 की ए. पी. ओ. सं. 26, 27, 39 और 42 में पारित आक्षेपित आदेशों में मध्यक्षेप नहीं किया जाता है, यद्यपि ये निर्णय पूर्णतया भिन्न आधारों, जिनको इनमें दर्शित किया गया है, पर पारित किए गए हैं । 2018 की ए. पी. ओ. सं. 37 में पारित किया गया आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है और 1996 के अधिनियम की धारा 9 के अधीन फाइल की गई संबद्ध याचिका, जो 2017 की ए. पी. ओ. सं. 35 है, लेटर्स पेटेंट के खंड 12 के अधीन प्रदान की गई आज्ञा को वापस लेते हुए अस्वीकृत किया जाता है और वित्तीय कंपनी को यह स्वतंत्रता प्रदान की जाती है कि वे इस याचिका को समुचित न्यायालय में प्रस्तुत करे । तद्नुसार, 2018 की ए. पी. ओ. सं. 26, 27, 39 और 42 खारिज की जाती हैं और 2018 की ए. पी. ओ. सं. 37 मंजूर की जाती हैं और 2018 की ए. पी. ओ. सं. 38 पर कोई आदेश पारित नहीं किया जाता, चूंकि इस मामले से संबंधित विवाद का निपटारा हो चुका है ।

87. लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता ।

88. इस निर्णय की तत्काल रूप से सत्यापित वेबसाइट प्रतियां, यदि उसके लिए आवेदन किया गया हो, पक्षों को समस्त अपेक्षित औपचारिकताओं के अनुपालन के पश्चात् प्रदान की जाए ।

तद्नुसार खारिज की गई ।

अवि.

मनीष पोद्दार

बनाम

एस. पेरुमल राज

तारीख 24 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति शेखर बी. सर्राफ़

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 8, नियम 5 और धारा 34 – ऋण का प्रदाय – वसूली – मौखिक करार में यह निबंधन होना कि यदि प्रतिवादी एक वर्ष के भीतर ऋण का प्रतिदाय करने में विफ़ल रहता है तो वह 18 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज का संदाय करने के लिए दायी होगा – प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध न किया जाना – जहां प्रतिवादी द्वारा वाद में किए गए कथनों का प्रत्याख्यान या विरोध नहीं किया जाता है वहां यह माना जाएगा कि प्रतिवादी ने प्रकथनों को स्वीकार कर लिया है – अत: वादी डिक्री पाने का हक़दार है – तथापि, 18 प्रतिशत मांगा गया ब्याज किसी दस्तावेजी साक्ष्य से समर्थित न होने के कारण 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज मंजूर करने से न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा ।

अक्तूबर, 2014 में प्रतिवादी ने वादी से 16ए बिराबोरने रोड, 9वां तल, कोलकाता-700001 पर संपर्क किया और ऋण देने के लिए वादी से अनुरोध किया । इसके पश्चात् वादी और प्रतिवादी मौखिक रूप से इस बात के लिए सहमत हुए कि वादी प्रतिवादी को 4 करोड़ रुपए एकमुश्त रूप में अस्थायी ऋण के रूप में उपलब्ध कराएगा । मौखिक करार के निबंधन अन्य बातों के साथ-साथ ये थे कि यदि प्रतिवादी एक वर्ष की अवधि के भीतर दिए गए ऋण का प्रतिदाय करने में विफल रहा तो प्रतिवादी सम्पूर्ण ऋण धनराशि पर ऋण दिए जाने की तारीख से प्रतिदाय करने की तारीख तक 18 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज का संदाय करने के लिए दायी होगा । करार के अनुसार अन्य बातों के साथ-साथ इस बात पर भी सहमति उपदर्शित की गई थी कि वादी किसी भी

समय ऋण वापस लेने के लिए स्वतंत्र होगा यदि प्रतिवादी ऋण दिए जाने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर ऋण का प्रतिदाय करने में विफल रहता है तब प्रतिवादी ऋण वापस लिए जाने पर अर्जित ब्याज के साथ सम्पूर्ण धनराशि का प्रतिदाय करेगा । यह वाद श्री मनीष पोद्दार पुत्री श्री अशोक कुमार पोद्दार, कार्यालय 16ए बिराबोरने रोड, 9वां तल, कोलकाता -700001 (जिसे आगे संक्षेप में 'वादी' कहा गया है) द्‌वारा श्री एस. पेरुमल राज निवासी 1/48, मेदापल्ली, कृष्नागरी, तमिलनाडु-635001 (जिसे आगे संक्षेप में 'प्रतिवादी' कहा गया है) के विरुद्ध दिए गए ऋण और अग्रिम की वसूली के लिए फाइल किया गया है । वाद में तद्‌नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित - न्यायालय के विचार में प्रतिवादी ने कभी भी इस बात से इनकार नहीं किया है और तथ्यत: इस बात को स्वीकार किया है कि उसने वादी से 4 करोड़ का अस्थायी ऋण प्राप्त किया था । किसी भी दशा में वादी द्‌वारा 4 करोड़ रुपए की धनराशि का संवितरण पूर्ण रूप से साबित कर दिया गया है । प्रतिवादी ने विभिन्न स्मरण-पत्रों और वादी के अधिवक्ता द्‌वारा जारी किए गए पत्र के बावजूद ऋण या उसके किसी भाग का प्रतिदाय नहीं किया । इसके साथ ही साथ प्रतिवादी ने वादी को जारी किए गए पत्रों के साथ कोई दस्तावेजी साक्ष्य भी संलग्न नहीं किया है । प्रतिवादी द्‌वारा दिए गए तर्कों को वादी द्‌वारा स्पष्ट रूप से नकारा गया है । इसके अतिरिक्त इस तथ्य से कि प्रतिवादी कभी भी वर्तमान वाद का विरोध करने के लिए आगे नहीं आया है, यह उपदर्शित होता है कि प्रतिवादी के पास उक्त पत्रों में उसके द्‌वारा किए गए कथनों को साबित करने के लिए कोई दस्तावेज या सामग्री नहीं है । प्रतिवादी ने कभी भी किसी पत्र में जो तारीख 2 अगस्त, 2017 या 28 अगस्त, 2017 को जारी किए गए हैं, मौखिक करार के निबंधनों से इनकार नहीं किया है या इस बारे में कुछ भी नहीं कहा है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 8, नियम 5 स्पष्टतया यह उपबंधित करता है कि यदि वादपत्र में के तथ्य संबंधी हर अभिकथन का विनिर्दिष्टत: या आवश्यक विवक्षा से प्रत्याख्यान नहीं किया जाता है या प्रतिवादी के अभिवचन में यह कथन कि वह स्वीकार नहीं किया जाता तो जहां तक निर्योग्यताधीन

व्यक्ति को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति का संबंध है वह स्वीकार कर लिया गया माना जाएगा । वर्तमान मामले में प्रतिवादी ने लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध नहीं किया है या अन्यथा वादपत्र में किसी कथन के प्रत्याख्यान का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हो सकता और इसलिए इसे प्रतिवादी द्वारा स्वीकार किया जाना माना जाएगा । न्यायालय के मतानुसार वादी द्वारा दावा किया गया ब्याज अर्थात् 18 प्रतिशत वार्षिक की दर से दावा किया गया ब्याज किसी लिखित दस्तावेजी साक्ष्य से समर्थित नहीं है और तद्नुसार न्यायालय का यह मत है कि वर्तमान वाद में दावा किया गया ब्याज न तो न्यायोचित है और न ही साबित किया गया है । अत: 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज अधिनिर्णीत करने से वर्तमान मामले में न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा । उपर्युक्त परिस्थितियों में वादी तारीख 29 अक्तूबर, 2014 से मूल धनराशि की वसूली की तारीख तक 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से संगणित ब्याज के साथ 4 करोड़ रुपए की धनराशि की डिक्री के लिए हकदार है । (पैरा 9, 10, 11, 12 और 13)

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2017 का सिविल वाद सं. 220.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 26 के अधीन वाद ।

वादी की ओर से सर्वश्री रूपक घोष, अरिन्दम चंद, सायन गांगुली, अतीश घोष, दीपरंजन मुखोपाध्याय और एस. घोष

प्रतिवादी की ओर से –

न्यायमूर्ति शेखर बी. सर्राफ़ – यह वाद श्री मनीष पोद्दार पुत्री श्री अशोक कुमार पोद्दार, कार्यालय 16ए बिराबोरने रोड, कोलकाता-700001 (जिसे आगे संक्षेप में 'वादी' कहा गया है) द्वारा श्री एस. पेरुमल राज निवासी 1/48, मेदापल्ली, कृष्नागरी, तमिलनाडु-635001 (जिसे आगे संक्षेप में 'प्रतिवादी' कहा गया है) के विरुद्ध दिए गए ऋण और अग्रिम की वसूली के लिए फाइल किया गया है ।

2. वर्तमान वाद से संबंधित कालक्रमिक तथ्य इस प्रकार हैं :-

क. अक्तूबर, 2014 में प्रतिवादी ने वादी से 16-ए बिराबोरने

बोर्ड, 9वां तल, कोलकाता-700001 पर संपर्क किया और ऋण देने के लिए वादी से अनुरोध किया । इसके पश्चात् वादी और प्रतिवादी मौखिक रूप से इस बात के लिए सहमत हुए कि वादी प्रतिवादी को 4 करोड़ रुपए एकमुश्त रूप में अस्थायी ऋण के रूप में उपलब्ध कराएगा ।

ख. मौखिक करार के निबंधन अन्य बातों के साथ-साथ ये थे कि यदि प्रतिवादी एक वर्ष की अवधि के भीतर दिए गए ऋण का प्रतिदाय करने में विफल रहा तो प्रतिवादी सम्पूर्ण ऋण धनराशि पर ऋण दिए जाने की तारीख से प्रतिदाय करने की तारीख तक 18 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज का संदाय करने के लिए दायी होगा । करार के अनुसार अन्य बातों के साथ-साथ इस बात पर भी सहमति उपदर्शित की गई थी कि वादी किसी भी समय ऋण वापस लेने के लिए स्वतंत्र होगा यदि प्रतिवादी ऋण दिए जाने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर ऋण का प्रतिदाय करने में विफल रहता है तब प्रतिवादी ऋण वापस लिए जाने पर अर्जित ब्याज के साथ सम्पूर्ण धनराशि का प्रतिदाय करेगा ।

ग. तारीख 29 अक्तूबर, 2014 को वादी ने ऋण की धनराशि आर. टी. जी. एस. द्वारा आई. डी. बी. आई. बैंक लिमिटेड में खोले गए खाते से तमिलनाडु स्थित आई. सी. आई. सी. आई. बैंक में प्रतिवादी के खाते में अंतरित की । वादी द्वारा धनराशि दो-बार में अंतरित की गई थी । पहला अंतरण 1 करोड़ 50 लाख रुपए का किया गया था जिसके लिए वादी ने एक चैक जारी किया था जिसकी सं. 327092 और तारीख 29 अक्तूबर, 2014 थी और दूसरा अंतरण 2 करोड़ 50 लाख रुपए का किया गया था जिसके लिए वादी ने अपने बैंक द्वारा 29 अक्तूबर, 2014 को चैक सं. 327093 का उपयोग किया था ।

घ. वादी तारीख 29 अक्तूबर, 2015 को ऋण वापस लेने का हकदार था और प्रतिवादी ऋण का प्रतिदाय करने तक 18 प्रतिशत वार्षिक की दर से अर्जित ब्याज के साथ अस्थायी रूप से दी गई कर्ज की धनराशि का प्रतिदाय करने के लिए दायी बन गया था ।

प्रतिवादी ने 18 प्रतिशत वार्षिक की दर से अर्जित ब्याज की धनराशि के साथ अस्थायी रूप से दी गई ऋण की धनराशि का प्रतिदाय करने के लिए किसी न किसी बहाने से वादी से समय चाहा ।

ङ. अंततः वादी ने तारीख 19 जुलाई, 2017 की सूचना द्वारा अस्थायी रूप से दिए गए ऋण को वापस लेने के लिए सूचना भेजी जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ उक्त सूचना की प्राप्ति की तारीख से 15 दिवस के भीतर 18 प्रतिशत वार्षिक की दर से उपार्जित ब्याज के साथ 4 करोड़ रुपए के उक्त ऋण को वापस करने की मांग की ।

च. प्रतिवादी ने तारीख 2 अगस्त, 2017 के पत्र द्वारा तारीख 19 जुलाई, 2017 की सूचना में वादी द्वारा किए गए दावों के संबंध में जवाब दिया । प्रतिवादी ने वादी से 4 करोड़ रुपए की अस्थायी कर्ज की धनराशि प्राप्त करना स्वीकार किया । इसके अतिरिक्त प्रतिवादी ने तारीख 10 अगस्त, 2017 का अभिकथित वचनबंध का निर्देश करते हुए यह कहा कि 10 लाख रुपए की धनराशि मूल धनराशि प्रतिवादी द्वारा वादी को तारीख 16 अगस्त, 2016 से ऋण के संबंध में ब्याज के साथ संदेय है तथापि, प्रतिवादी ने पत्र में किए गए कथनों के संबंध में कोई विशिष्टि प्रकट नहीं की ।

छ. वादी ने तारीख 19 अगस्त, 2017 के पत्र द्वारा प्रतिवादी के तारीख 2 अगस्त, 2017 के पत्र का जवाब दिया । इसके पश्चात् प्रतिवादी ने तारीख 28 अगस्त, 2017 के पत्र द्वारा वादी के तारीख 19 अगस्त, 2017 के पत्र के संबंध में जवाब दिया । अंततः वादी ने तारीख 11 सितंबर, 2017 के पत्र द्वारा प्रतिवादी के तारीख 28 अगस्त, 2017 के पत्र का भी जवाब दिया ।

3. वादी के अनुरोध पर उप-रजिस्ट्रार ने यह प्रमाणित किया कि प्रतिवादी तारीख 15 जनवरी, 2019 को व्यक्तिगत रूप से अथवा अपने अधिवक्ता द्वारा उपस्थित नहीं हुआ । अतः न्यायालय के आदेश द्वारा

मामला सुनवाई के लिए 'अप्रतिवादित वाद' के रूप में नियत किया गया ।

4. इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या वादी अनुरोध की गई डिक्री को प्राप्त करने का हकदार है ।

5. श्री मनीष पोद्दार की वादी के रूप में इस न्यायालय के समक्ष तारीख 10 अप्रैल, 2019 को परीक्षा की गई थी । वादी ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि प्रतिवादी और वादी एक-दूसरे को पिछले 10 वर्षों से जानते हैं और उनके बीच अक्तूबर, 2014 में एक मौखिक करार हुआ था जिसमें वादी 4 करोड़ रुपए का एकमुश्त ऋण प्रतिवादी को देने के लिए सहमत हुआ था और दिया गया ऋण प्रतिवादी द्वारा वादी को एक वर्ष की अवधि के भीतर वापस करना था ।

6. साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने 1 अक्तूबर, 2014 से 31 दिसंबर, 2014 की अवधि के लिए आई. डी. बी. आई. बैंक, मुखर्जी हाउस, 17, बिराबोरने रोड, कोलकाता में खोले गए अपने बैंक खाते के संक्षिप्त विवरण की प्रभारित प्रति प्राप्त की थी जिसे प्रदर्श-ए के रूप में चिह्नांकित किया गया है । तारीख 29 अक्तूबर, 2014 को दो प्रविष्टियां की गई हैं जिनसे यह उपदर्शित होता है कि 1 करोड़ 50 लाख रुपए की धनराशि और 2 करोड़ 50 लाख रुपए की धनराशि वादी द्वारा प्रतिवादी को अंतरित की गई थी । प्रविष्टियों का वादी द्वारा रखे गए खातों की पुस्तकों में भी उल्लेख किया गया है । साक्षी ने संदाय वाउचरों के बारे में भी बताया है जिन्हें संचयी रूप से प्रदर्श-बी के रूप में चिह्नांकित किया गया है और वादी के बैंक की मुद्रा के अधीन आर. टी. जी. एस. बंदोबस्त रिपोर्टें भी प्राप्त की गई हैं जिन्हें प्रदर्श-सी के रूप में चिह्नांकित किया गया है ।

7. साक्षी ने अपनी प्रति-परीक्षा के दौरान यह कहा है कि वादी ने तारीख 19 जुलाई, 2017 की अधिवक्ता सूचना द्वारा प्रतिवादी से ऋण वापस करने के लिए कहा था । सूचना में यह कहा गया था कि प्रतिवादी इस सूचना की प्राप्ति की तारीख से 15 दिवसों के भीतर वादी को ब्याज के साथ 4 करोड़ रुपए की संपूर्ण धनराशि वापस करे । उक्त सूचना डाक

ट्रेकिंग रिपोर्ट के साथ दाखिल की गई है जिसे प्रदर्श-बी के रूप में चिह्नांकित किया गया है । प्रतिवादी ने तारीख 2 अगस्त, 2017 के पत्र द्वारा जो प्रतिवादी के अधिवक्ता द्वारा जारी किया गया था, तारीख 19 जुलाई, 2017 की सूचना का जवाब दिया था और पक्षकारों के बीच कई पत्रों का आदान-प्रदान हुआ था जो कि तारीख 19 अगस्त, 2017, तारीख 28 अगस्त, 2017 और तारीख 11 सितंबर, 2017 के हैं । उक्त पत्र दाखिल किए गए हैं जिन्हें प्रदर्श-ई, प्रदर्श-एफ, प्रदर्श-जी और प्रदर्श-एच के रूप में चिह्नांकित किया गया है ।

8. साक्षी ने अपनी प्रति-परीक्षा के दौरान तारीख 31 मार्च, 2015 को समाप्त होने वाले वित्तीय वर्ष में हुए फायदे और नुकसान का विवरण-पत्र भी पेश किया है जिसे प्रदर्श-आई के रूप में चिह्नांकित किया गया है । उक्त प्रदर्शित दस्तावेज पर नीली पेंसिल से गोला लगाए गए भाग को प्रतिवादी को दिए गए अग्रिम ऋण के बारे में दर्शाया गया है जिसे प्रदर्श-आई-1 के रूप में चिह्नांकित किया गया है ।

9. मेरे विचार में प्रतिवादी ने कभी भी इस बात से इनकार नहीं किया है और तथ्यत: इस बात को स्वीकार किया है कि उसने वादी से 4 करोड़ रुपए का अस्थायी ऋण प्राप्त किया था । किसी भी दशा में वादी द्वारा 4 करोड़ रुपए की धनराशि का संवितरण पूर्ण रूप से साबित कर दिया गया है । प्रतिवादी ने विभिन्न स्मरण-पत्रों और वादी के अधिवक्ता द्वारा जारी किए गए पत्र के बावजूद ऋण या उसके किसी भाग का प्रतिदाय नहीं किया । इसके साथ ही साथ प्रतिवादी ने वादी को जारी किए गए पत्रों के साथ कोई दस्तावेजी साक्ष्य भी संलग्न नहीं किया है । प्रतिवादी द्वारा दिए गए तर्कों को वादी द्वारा स्पष्ट रूप से नकारा गया है ।

10. इसके अतिरिक्त इस तथ्य से कि प्रतिवादी कभी भी वर्तमान वाद का विरोध करने के लिए आगे नहीं आया है, यह उपदर्शित होता है कि प्रतिवादी के पास उक्त पत्रों में उसके द्वारा किए गए कथनों को साबित करने के लिए कोई दस्तावेज या सामग्री नहीं है । प्रतिवादी ने कभी भी किसी पत्र में जो तारीख 2 अगस्त, 2017 या 28 अगस्त, 2017 को जारी किए गए हैं, मौखिक करार के निबंधनों से इनकार नहीं किया है या इस बारे में कुछ भी नहीं कहा है ।

11. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 8, नियम 5 स्पष्टतया यह उपबंधित करता है कि यदि वादपत्र में के तथ्य संबंधी हर अभिकथन का विनिर्दिष्टत: या आवश्यक विवक्षा से प्रत्याख्यान नहीं किया जाता है या प्रतिवादी के अभिवचन में यह कथन कि वह स्वीकार नहीं किया जाता तो जहां तक निर्योग्यताधीन व्यक्ति को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति का संबंध है वह स्वीकार कर लिया गया माना जाएगा । वर्तमान मामले में प्रतिवादी ने लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध नहीं किया है या अन्यथा वादपत्र में किसी कथन के प्रत्याख्यान का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हो सकता और इसलिए इसे प्रतिवादी द्वारा स्वीकार किया जाना माना जाएगा ।

12. मेरे मतानुसार वादी द्वारा दावा किया गया ब्याज अर्थात् 18 प्रतिशत वार्षिक की दर से दावा किया गया ब्याज किसी लिखित दस्तावेजी साक्ष्य से समर्थित नहीं है और तद्नुसार मेरा यह मत है कि वर्तमान वाद में दावा किया गया ब्याज न तो न्यायोचित है और न ही साबित किया गया है । अत: 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज अधिनिर्णीत करने से वर्तमान मामले में न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा ।

13. उपर्युक्त परिस्थितियों में वादी तारीख 29 अक्तूबर, 2014 से मूल धनराशि की वसूली की तारीख तक 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से संगणित ब्याज के साथ 4 करोड़ रुपए की धनराशि की डिक्री के लिए हकदार है ।

14. खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । विभाग को डिक्री तुरंत बनाने का निदेश किया जाता है ।

15. अपेक्षित औपचारिकताएं पूरा करने पर इस आदेश की प्रमाणित फोटो प्रति पक्षकारों को, यदि आवेदन किया जाता है, तुरंत उपलब्ध कराई जाएगी ।

वाद में तद्नुसार आदेश पारित किया गया ।

मह.

अली पट्टक्कल

बनाम

शाहिदा बीवी और अन्य

तारीख़ 10 दिसंबर, 2018

न्यायमूर्ति ए. एम. शफीक़ और न्यायमूर्ति ए. एम. बाबू

मुस्लिम विधि – पत्नी और पुत्र द्वारा भरण-पोषण के लिए दावा – प्रतिवादी द्वारा किसी प्रकार की नातेदारी अर्थात् विवाह से इनकार -- वादियों द्वारा विवाह के संबंध में जमात का प्रमाण-पत्र पेश न किया जाना – प्रभाव – किसी विवाह को साबित करने के लिए जमात का प्रमाण-पत्र पेश किया जाना आवश्यक नहीं है – जहां अन्य साक्ष्यों से विधिमान्य विवाह का सम्पन्न होना साबित होता हो वहां प्रतिवादी भरण-पोषण के अपने दायित्व से इनकार नहीं कर सकता ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 112 – उपधारणा – वादियों द्वारा भरण-पोषण के लिए दावा – प्रतिवादी द्वारा विवाह होने और बच्चे का पिता होने से इनकार – जहां विवाह साबित हो गया हो वहां यह उपधारणा की जा सकती है कि अभिकथित बालक माता-पिता के विवाह से ही उत्पन्न हुआ है – अत: पिता बच्चे के भरण-पोषण के लिए जिम्मेदार है ।

वादियों ने अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथित किया कि प्रथम वादी का प्रतिवादी के साथ तारीख 14 अप्रैल, 1996 को मुस्लिम विधि के अनुसार विवाह हुआ था । उनके विवाह से तारीख 6 जुलाई, 1997 को एक पुत्र का जन्म हुआ जिसे वादी सं. 2 के रूप में पक्षकार बनाया गया है । वादियों के अनुसार प्रतिवादी ने तारीख 6 अक्तूबर, 1997 को उन्हें छोड़ दिया और उसके पश्चात् उनका भरण-पोषण नहीं किया । वादी सं. 1 ने अपने लिए 2,000/- रुपए प्रतिमास और वादी सं. 2 के लिए 1,000/- रुपए प्रतिमास भरण-पोषण का दावा किया । उसने भविष्य के लिए इसी दर पर भरण-पोषण के लिए दावा किया । प्रतिवादी ने वादियों के साथ कोई भी नातेदारी होने से इनकार किया । वह (प्रतिवादी) विक्रम सारा

भाई स्पेस सेन्टर में एक कर्मचारी है । उसने वर्ष 1993 में 15 सेन्ट संपत्ति क्रय करने के पश्चात् उसमें एक मकान निर्मित कराना आरंभ किया था । प्रथम वादी के पिता ने प्रतिवादी को निर्माण में सहायता देने विशेषतया लकड़ी और बढ़ईगीरी में सहायता करने का प्रस्ताव किया । जब निर्माण पूरा हो गया तो उसने पर्यवेक्षण (देखभाल) के प्रभारों के रूप में 25,000/- रुपए की मांग की और अपनी पुत्री/प्रथम वादी से विवाह करने के लिए प्रस्ताव किया । तथापि, उसने यह विनिश्चय किया कि वादी सं. 1 के पिता द्वारा की गई मांग को संपत्ति को विक्रीत करने के पश्चात् पूरा किया जा सकता है । तथापि, वादियों के अनुरोध पर संपत्ति कुर्क होने के कारण यह संपत्ति विक्रीत नहीं की जा सकी । इसी दौरान एक अन्य व्यक्ति ने इसरो कर्मचारी संगम से संपर्क किया और यह अभिकथित करते हुए एक शिकायत फाइल की कि प्रतिवादी ने अपने पूर्वतर विवाह की विद्यमानता के दौरान दूसरे विवाह की संविदा की है । प्रथम वादी ने प्रतिवादी के विभाग और महिला आयोग के समक्ष भी शिकायतें दर्ज कराईं । उसने यह भी कहा कि मकान की चाबी वादी सं. 1 के पिता को सौंपने के पश्चात् वादी उसमें रहने लगे । यद्यपि प्रतिवादी ने पुलिस के समक्ष शिकायत फाइल की तथापि, पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की । उसने विवाह की संविदा से भी इनकार किया और भरण-पोषण संदाय करने के अपने दायित्व से भी इनकार किया । कुटुंब न्यायालय के समक्ष मौखिक परिसाक्ष्य के रूप में पी. डब्ल्यू.-1 से पी. डब्ल्यू.-9 और सी. पी. डब्ल्यू.-1 का साक्ष्य कराया गया था । वादियों ने प्रदर्श-ए/1 से प्रदर्श-ए/16 का अवलंब लिया और प्रतिवादी ने प्रदर्श-बी/1 से प्रदर्श-बी/13 का अवलंब लिया । कुटुंब न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि चूंकि वादी सं. 1 और प्रतिवादी के बीच एक विधिमान्य विवाह हुआ था, इसलिए वह वादियों का भरण-पोषण करने के लिए आबद्ध है और इसलिए वाद प्रतिवादी के विरुद्ध प्रत्येक के लिए 500/- रुपए प्रतिमास की दर से भरण-पोषण मंजूर करते हुए डिक्री किया गया और मंजूर की गई धनराशि वाद की तारीख से वादपत्र में दी गई संपत्ति और आस्तियों से वसूल करने का आदेश दिया गया । प्रतिवादी द्वारा यह अपील कुटुंब न्यायालय, नेदूमंगद द्वारा मूल वाद सं. 24/2005 में दिए गए निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । वाद मूल रूप से कुटुंब

न्यायालय, तिरुअनन्तपुरम के समक्ष 1999 के मूल वाद सं. 122 के रूप में फाइल किया गया था और बाद में इसे कुटुंब न्यायालय नेदूमंगद में स्थानांतरित किया गया था । हमारे समक्ष के प्रत्यर्थियों द्वारा वाद वादियों के लिए पूर्व भरण-पोषण का अनुरोध करते हुए फाइल किया गया था । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि जहां किसी विवाह के बारे में विवाद किया गया हो वहां विवाह का दावा करने वाले व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह विधिमान्य विवाह साबित करे । निस्संदेह पी. डब्ल्यू.-1 ने विवाह के बारे में वैसा बयान दिया है जैसाकि वादपत्र में कहा गया है । पी. डब्ल्यू.-4 वादी सं. 1 का पिता है और पी. डब्ल्यू.-7 उसका भाई है जिन्होंने उसके कथन का समर्थन किया है । इसके अतिरिक्त पी. डब्ल्यू.-2 काराकुलम मुस्लिम जमात का सचिव है और पी. डब्ल्यू.-9 ऐसा दूसरा सचिव है जिसने यह प्रमाणित करने वाले अभिलेख पेश किए हैं कि प्रतिवादी और वादी सं. 1 के बीच विवाह की संविदा हुई है । पी. डब्ल्यू.-3 वादियों का नातेदार है जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह विवाह के समय मौजूद था । पी. डब्ल्यू.-5 पी. डब्ल्यू.-1 का नातेदार है जिसने विवाह समारोह के फोटो चित्र लिए थे । फोटो चित्र प्रदर्श-ए/7, ए/12 और प्रदर्श-ए/13 के रूप में पेश किए गए हैं । पी. डब्ल्यू.-6 वह व्यक्ति है जो प्रतिवादी और वादी सं. 1 के बीच हुए विवाह के कार्यक्रम में सम्मिलित हुआ था । इसके अतिरिक्त पी. डब्ल्यू.-8 अर्थात् काराकुलम सर्विस को-आपरेटिव बैंक के सह-सचिव ने यह साक्ष्य दिया है कि प्रतिवादी ने तारीख 12 अक्तूबर, 1996 को पी. डब्ल्यू.-4 द्वारा किए गए ऋण संव्यवहार के लिए प्रतिभूति दी थी । प्रदर्श-ए/14 वह प्रमाण-पत्र है जिससे उक्त तथ्य साबित होता है और प्रदर्श-ए/16 वह पहचान-पत्र है जो तारीख 25 सितंबर, 1994 को काराकुलम सर्विस को-आपरेटिव बैंक द्वारा प्रतिवादी के हक में जारी किया गया है । इन साक्षियों के साक्ष्य से और पेश किए गए संबंधित दस्तावेजों से विशेषतया फोटो-चित्रों से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि निकाह समारोह हुआ था और उसके द्वारा प्रतिवादी ने विवाह की संविदा की थी । यह दोहराया जा सकता है कि किसी मुस्लिम के विवाह के

लिए जमात से प्रमाण-पत्र लेना आवश्यक नहीं है । मुस्लिम विवाह एक संविदा है और इसलिए विवाह समारोह को 'निकाह' के रूप में जाना जाता है जो कि साक्षियों की उपस्थिति में एक प्रस्ताव और स्वीकृति है । सामान्यतया संविदा वर (दूल्हा) और वधू के पिता के बीच होती है जहां 'मेहर' भी प्रतिफल के रूप में संदत्त किया जाता है । क्योंकि मामले में फोटो-चित्र पेश किए गए हैं और यदि साक्षियों के जो विवाह में सम्मिलित हुए थे, मौखिक परिसाक्ष्य पर विचार किया जाए तो जमात के दस्तावेजों पर विश्वास किए बिना भी विवाह को साबित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य मौजूद है । (पैरा 5 और 6)

जब एक बार विवाह साबित हो गया हो तो बालक का पैतृत्व उपधारित किया जा सकता है जहां पत्नी किसी विधिमान्य विवाह के रहते हुए किसी बालक को जन्म देती है । चूंकि प्रत्यर्थी ने यह पक्षकथन नहीं किया है कि उसने बाद में प्रथम वादी से विवाह विच्छिन्न कर लिया था इसलिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 के अधीन उपधारणा के आधार पर पैतृत्व को विवादित नहीं किया जा सकता । एक अन्य पहलू भी है जिसका कुटुंब न्यायालय द्वारा उल्लेख किया गया है और वह डी. एन. ए. परीक्षा के संबंध में है । राजीव गांधी बायो-टेक्नोलाजी सेन्टर ने तारीख 28 दिसंबर, 1999 को प्रमाण-पत्र प्रदर्श-ए/1 जारी किया था । रिपोर्ट से यह उपदर्शित होता है कि अभिकथित पिता 99 प्रतिशत की संभावना से अधिक बालक का विधिक जैविक पिता प्रतीत होता है । निस्संदेह अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि उसने रक्त का कोई नमूना नहीं दिया था । अन्यथा भी चूंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 के निबंधनों में उपधारणा की जा सकती है इसलिए किसी अप्राप्तवय के भरण-पोषण के लिए उसके दायित्व को विवादित नहीं किया जा सकता । परिणामतः न्यायालय का यह मत है कि कुटुंब न्यायालय द्वारा उपर्युक्त निष्कर्ष निकालने में कोई त्रुटि नहीं की गई है इसलिए निर्णय में हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है । (पैरा 7 और 8)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की वैवाहिक अपील सं. 256.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री के. के. धीरेन्द्र कृष्णन

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री पी. पी. बीजू और एस. अबू बकर कुंजू

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. एम. शफीक ने दिया ।

न्या. शफीक – प्रतिवादी द्वारा यह अपील कुटुंब न्यायालय, नेदूमंगद द्वारा मूल वाद सं. 24/2005 में दिए गए निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । वाद मूल रूप से कुटुंब न्यायालय, तिरुअनन्तपुरम के समक्ष 1999 के मूल वाद सं. 122 के रूप में फाइल किया गया था और बाद में इसे कुटुंब न्यायालय नेदूमंगद में स्थानांतरित किया गया था । हमारे समक्ष के प्रत्यर्थियों द्वारा वाद वादियों के लिए पूर्व भरण-पोषण का अनुरोध करते हुए फाइल किया गया था ।

2. वादियों ने अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथित किया कि प्रथम वादी का प्रतिवादी के साथ तारीख 14 अप्रैल, 1996 को मुस्लिम विधि के अनुसार विवाह हुआ था । उनके विवाह से तारीख 6 जुलाई, 1997 को एक पुत्र का जन्म हुआ जिसे वादी सं. 2 के रूप में पक्षकार बनाया गया है । वादियों के अनुसार प्रतिवादी ने तारीख 6 अक्तूबर, 1997 को उन्हें छोड़ दिया और उसके पश्चात् उनका भरण-पोषण नहीं किया । वादी सं. 1 ने अपने लिए 2,000/- रुपए प्रतिमास और वादी सं. 2 के लिए 1,000/- रुपए प्रतिमास भरण-पोषण का दावा किया । उसने भविष्य के लिए इसी दर पर भरण-पोषण के लिए दावा किया । प्रतिवादी ने वादियों के साथ कोई भी नातेदारी होने से इनकार किया । वह (प्रतिवादी) विक्रम सारा भाई स्पेस सेन्टर में एक कर्मचारी है । उसने वर्ष 1993 में 15 सेन्ट संपत्ति क्रय करने के पश्चात् उसमें एक मकान निर्मित कराना आरंभ किया था । प्रथम वादी के पिता ने प्रतिवादी को निर्माण में सहायता देने विशेषतया लकड़ी और बढ़ईगीरी में सहायता करने का प्रस्ताव किया । जब निर्माण पूरा हो गया तो उसने पर्यवेक्षण (देखभाल) के प्रभारों के रूप में 25,000/- रुपए की मांग की और अपनी पुत्री/प्रथम वादी से विवाह करने के लिए प्रस्ताव किया । तथापि, उसने यह विनिश्चय किया कि वादी सं. 1 के पिता द्वारा की गई मांग को संपत्ति को विक्रीत करने के

पश्चात् पूरा किया जा सकता है । तथापि, वादियों के अनुरोध पर संपत्ति कुर्क होने के कारण यह संपत्ति विक्रीत नहीं की जा सकी । इसी दौरान एक अन्य व्यक्ति ने इसरो कर्मचारी संगम से संपर्क किया और यह अभिकथित करते हुए एक शिकायत फाइल की कि प्रतिवादी ने अपने पूर्वतर विवाह की विद्यमानता के दौरान दूसरे विवाह की संविदा की है । प्रथम वादी ने प्रतिवादी के विभाग और महिला आयोग के समक्ष भी शिकायतें दर्ज कराईं । उसने यह भी कहा कि मकान की चाबी वादी सं. 1 के पिता को सौंपने के पश्चात् वादी उसमें रहने लगे । यद्यपि प्रतिवादी ने पुलिस के समक्ष शिकायत फाइल की तथापि, पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की । उसने विवाह की संविदा से भी इनकार किया और भरण-पोषण संदाय करने के अपने दायित्व से भी इनकार किया ।

3. कुटुंब न्यायालय के समक्ष मौखिक परिसाक्ष्य के रूप में पी. डब्ल्यू.-1 से पी. डब्ल्यू.-9 और सी. पी. डब्ल्यू.-1 का साक्ष्य कराया गया था । वादियों ने प्रदर्श-ए/1 से प्रदर्श-ए/16 का अवलंब लिया और प्रतिवादी ने प्रदर्श-बी/1 से प्रदर्श-बी/13 का अवलंब लिया । कुटुंब न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि चूंकि वादी सं. 1 और प्रतिवादी के बीच एक विधिमान्य विवाह हुआ था, इसलिए वह वादियों का भरण-पोषण करने के लिए आबद्ध है और इसलिए वाद प्रतिवादी के विरुद्ध प्रत्येक के लिए 500/- रुपए प्रतिमास की दर से भरण-पोषण मंजूर करते हुए डिक्री किया गया और मंजूर की गई धनराशि वाद की तारीख से वादपत्र में दी गई संपत्ति और आस्तियों से वसूल करने का आदेश दिया गया ।

4. जब उक्त मामला सुनवाई के लिए पेश हुआ तब अपीलार्थी ने अपने लिए कौंसिल नियुक्त करने में असमर्थता जताई इसलिए हमने अपीलार्थी की ओर से श्री धीरेन्द्र कृष्णन अधिवक्ता से उपस्थित होने के लिए अनुरोध किया था । विद्वान् काउंसेल ने मामले का विस्तृत रूप से अध्ययन करने के पश्चात् हमारे समक्ष यह दलील दी कि प्रतिवादी और वादी सं. 1 के बीच कोई विधिक और विधिमान्य विवाह साबित करने के लिए साक्ष्य पेश नहीं किया गया है और वादी सं. 2 प्रतिवादी के विवाह से उत्पन्न पुत्र नहीं है ।

5. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि जहां किसी विवाह के बारे में विवाद किया गया हो वहां विवाह का दावा करने वाले व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह विधिमान्य विवाह साबित करे । निस्संदेह पी. डब्ल्यू.-1 ने विवाह के बारे में वैसा बयान दिया है जैसाकि वादपत्र में कहा गया है । पी. डब्ल्यू.-4 वादी सं. 1 का पिता है और पी. डब्ल्यू.-7 उसका भाई है जिन्होंने उसके कथन का समर्थन किया है । इसके अतिरिक्त पी. डब्ल्यू.-2 काराकुलम मुस्लिम जमात का सचिव है और पी. डब्ल्यू.-9 ऐसा दूसरा सचिव है जिसने यह प्रमाणित करने वाले अभिलेख पेश किए हैं कि प्रतिवादी और वादी सं. 1 के बीच विवाह की संविदा हुई है । पी. डब्ल्यू.-3 वादियों का नातेदार है जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह विवाह के समय मौजूद था । पी. डब्ल्यू.-5 पी. डब्ल्यू.-1 का नातेदार है जिसने विवाह समारोह के फोटो चित्र लिए थे । फोटो चित्र प्रदर्श-ए/7, ए/12 और प्रदर्श-ए/13 के रूप में पेश किए गए हैं । पी. डब्ल्यू.-6 वह व्यक्ति है जो प्रतिवादी और वादी सं. 1 के बीच हुए विवाह के कार्यक्रम में सम्मिलित हुआ था । इसके अतिरिक्त पी. डब्ल्यू.-8 अर्थात् काराकुलम सर्विस को-आपरेटिव बैंक के सह-सचिव ने यह साक्ष्य दिया है कि प्रतिवादी ने तारीख 12 अक्तूबर, 1996 को पी. डब्ल्यू.-4 द्वारा किए गए ऋण संव्यवहार के लिए प्रतिभूति दी थी । प्रदर्श-ए/14 वह प्रमाण-पत्र है जिससे उक्त तथ्य साबित होता है और प्रदर्श-ए/16 वह पहचान-पत्र है जो तारीख 25 सितंबर, 1994 को काराकुलम सर्विस को-आपरेटिव बैंक द्वारा प्रतिवादी के हक में जारी किया गया है । इन साक्षियों के साक्ष्य से और पेश किए गए संबंधित दस्तावेजों से विशेषतया फोटो-चित्रों से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि निकाह समारोह हुआ था और उसके द्वारा प्रतिवादी ने विवाह की संविदा की थी ।

6. यह दोहराया जा सकता है कि किसी मुस्लिम के विवाह के लिए जमात से प्रमाण-पत्र लेना आवश्यक नहीं है । मुस्लिम विवाह एक संविदा है और इसलिए विवाह समारोह को 'निकाह' के रूप में जाना जाता है जो कि साक्षियों की उपस्थिति में एक प्रस्ताव और स्वीकृति है । सामान्यतया संविदा वर (दूल्हा) और वधू के पिता के बीच होती है

जहां 'मेहर' भी प्रतिफल के रूप में संदत्त किया जाता है । क्योंकि मामले में फोटो-चित्र पेश किए गए हैं और यदि साक्षियों के जो विवाह में सम्मिलित हुए थे, मौखिक परिसाक्ष्य पर विचार किया जाए तो जमात के दस्तावेजों पर विश्वास किए बिना भी विवाह को साबित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य मौजूद है ।

7. जब एक बार विवाह साबित हो गया हो तो बालक का पैतृत्व उपधारित किया जा सकता है जहां पत्नी किसी विधिमान्य विवाह के रहते हुए किसी बालक को जन्म देती है । चूंकि प्रत्यर्थी ने यह पक्षकथन नहीं किया है कि उसने बाद में प्रथम वादी से विवाह विच्छिन्न कर लिया था इसलिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 के अधीन उपधारणा के आधार पर पैतृत्व को विवादित नहीं किया जा सकता । एक अन्य पहलू भी है जिसका कुटुंब न्यायालय द्वारा उल्लेख किया गया है और वह डी. एन. ए. परीक्षा के संबंध में है । राजीव गांधी बायो-टेक्नोलाजी सेन्टर ने तारीख 28 दिसंबर, 1999 को प्रमाण-पत्र प्रदर्श-ए/1 जारी किया था । रिपोर्ट से यह उपदर्शित होता है कि अभिकथित पिता 99 प्रतिशत की संभावना से अधिक बालक का विधिक जैविक पिता प्रतीत होता है । निस्संदेह अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि उसने रक्त का कोई नमूना नहीं दिया था । अन्यथा भी चूंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 के निबंधनों में उपधारणा की जा सकती है इसलिए किसी अप्राप्तवय के भरण-पोषण के लिए उसके दायित्व को विवादित नहीं किया जा सकता ।

8. परिणामतः हमारा यह मत है कि कुटुंब न्यायालय द्वारा उपर्युक्त निष्कर्ष निकालने में कोई त्रुटि नहीं की गई है इसलिए निर्णय में हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है । वैवाहिक अपील खारिज की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

गुतुंग वेट्टाली फिशरी को-आपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड, असम

बनाम

असम राज्य और अन्य

तारीख़ 18 मई, 2018

न्यायमूर्ति अनूप कुमार गोस्वामी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 और 299 और मत्स्य पालन अधिनियम, 1897 – धारा 6 [सपठित असम मत्स्य पालन नियम, 1953 का नियम 50 (सरकारी अधिसूचना सं. फिश-2/2000/171 द्वारा यथा संशोधित)] – मत्स्य पालन के लिए निविदा – प्राधिकारी द्वारा 3 वर्ष की अवधि के लिए निविदा आमंत्रण सूचना – बाद में उक्त सूचना को वापस लेते हुए 7 वर्ष के व्यवस्थापन के लिए निविदा आमंत्रण सूचना के लिए संदेश जारी किया जाना – चुनौती – चूंकि संशोधित सूचना संदेश नियम 50 के अनुसरण में है अत: ऐसी निविदा आमंत्रण सूचना संदेश को अवैध नहीं ठहराया जा सकता ।

असम सरकार के मत्स्य विभाग के संयुक्त सचिव द्वारा अपर उपायुक्त-सहयुक्त-प्रभारी उप-खंड अधिकारी, धकुआखाना उप-खंड को संबोधित करते हुए तारीख 1 फरवरी, 2018 की निविदा आमंत्रण सूचना इस आधार पर रद्द करने के लिए तारीख 9 अप्रैल, 2018 को एक डब्ल्यू. टी. संदेश जारी किया गया था कि निविदा आमंत्रण सूचना 3 वर्ष की अवधि के लिए जारी की गई थी । तारीख 9 अप्रैल, 2018 के उपर्युक्त डब्ल्यू. टी. संदेश में यह कहा गया था कि असम मत्स्य नियम, 1953 के नियम 50 के संशोधन को दृष्टिगत करते हुए तारीख 31 मार्च, 2018 (जो 31 मार्च, 2005 लिखी गई है) की सरकारी अधिसूचना सं. फिश 2/2000/171 द्वारा रजिस्ट्रीकृत मत्स्य क्षेत्रों के पट्टे की अवधि अधिकतम सात वर्ष तक विस्तारित की गई है और इसलिए जारी की गई निविदा आमंत्रण सूचना यथा संशोधित उक्त नियम के अनुरूप नहीं है । 2018 की रिट याचिका (सिविल) सं. 2645 उपर्युक्त तारीख 9

अप्रैल, 2018 के डब्ल्यू. टी. संदेश को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है जिसमें प्रत्यर्थियों को तारीख 1 फरवरी, 2018 की निविदा आमंत्रण सूचना को तर्कयुक्त रूप से निपटाने के लिए निदेश देने हेतु अनुरोध किया गया है । 2018 की रिट याचिका (सिविल) सं. 2696 तारीख 13 अप्रैल, 2018 की उस निविदा सूचना को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है जो अपर उपायुक्त-सहयुक्त-प्रभारी उप-खंड अधिकारी, धकुआखाना द्वारा सं. 40 सेला चरिकोरिया मीन महाल के व्यवस्थापन के लिए नए सिरे से निविदाएं आमंत्रित करते हुए जारी की गई थी । याची द्वारा उक्त डब्ल्यू. टी. संदेश को आक्षेपित करते हुए वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – 1953 के नियमों का नियम 50 जैसा कि यह विद्यमान है, यह उपबंध करता है कि रजिस्ट्रीकृत मत्स्य-क्षेत्रों में मत्स्य पालन का अधिकार खंड (क) से (छ) में उल्लिखित शर्तों को पूरा करने के अध्यधीन अधिकतम 7 वर्षों के लिए दिया जाएगा । उपबंध में उल्लिखित भाषा स्पष्ट है और इस आशय के लिए असंदिग्ध है कि मत्स्य पालन का अधिकार 7 वर्ष के लिए दिया जा सकता है । प्रथमत: मत्स्य पालन का यह अधिकार राज्य उदार दान के वितरण की स्थापित प्रक्रिया द्वारा प्रदत्त किया जाएगा और जैसाकि वर्तमान मामले में स्पष्ट है कि निविदा आमंत्रण सूचना मत्स्य पालन के अधिकार के प्रयोग के लिए चयनित निविदा कर्ताओं को समर्थ बनाने के लिए व्यवस्थापन के प्रयोजनार्थ जारी की गई थी । कोई निविदा आमंत्रण सूचना 1953 के नियमों के नियम 50 में उल्लिखित उपबंध को दृष्टिगत करते हुए व्यवस्थापन द्वारा मत्स्य पालन का अधिकार प्रदत्त करने के लिए 7 वर्ष से अधिक की अवधि के लिए निविदा आमंत्रित करते हुए जारी नहीं की जा सकती । व्यवस्थापन के मूल आदेश में विस्तार मंजूर करने की शक्ति शर्तों को पूरा करने के अध्यधीन है जैसाकि नियम 8 (ख) में उपदर्शित है और यह पूर्ण रूप से पृथक् आधार पर है । यह नहीं कहा जा सकता कि यद्यपि शक्ति 7 वर्ष के लिए मत्स्य पालन के अधिकार की मंजूरी के लिए नियम 50 में उपबंधित है तथापि, मूल व्यवस्थापन आदेश उपर्युक्त अवधि से अनधिक अवधि के लिए होना चाहिए जिससे

कि विस्तार को यदि कोई हो, मंजूर किया जा सके । स्वीकृतत: तारीख 1 फरवरी, 2018 की निविदा आमंत्रण सूचना 3 वर्ष की व्यवस्थापन अवधि तक सीमित है और चूंकि सरकार ने यह दृष्टिकोण अपनाया था कि यह नियम 50 के अनुसरण में होना चाहिए और इसलिए व्यवस्थापन 7 वर्ष की अवधि के लिए प्रस्तावित होना चाहिए इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि तारीख 9 अप्रैल, 2018 का डब्ल्यू. टी. संदेश मनमाने रूप में अथवा 1953 के नियमों के अतिक्रमण में जारी किया गया है । तारीख 13 अप्रैल, 2018 की निविदा आमंत्रण सूचना को इस आधार पर आक्षेपित किया गया है कि यह तारीख 9 अप्रैल, 2018 के डब्ल्यू. टी. संदेश के अनुसरण में जारी की गई थी जो कि स्वत: विधिक रूप से मान्य नहीं थी । जहां डब्ल्यू. टी. संदेश को विधिमान्य ठहराया गया है वहां आवश्यक रूप से तर्कयुक्त परिणाम के रूप में तारीख 13 अप्रैल, 2018 की निविदा आमंत्रण सूचना के लिए आक्षेप विफल होना चाहिए । (पैरा 11 और 12)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2018 की रिट याचिका (सिविल) सं. 2696.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री एस. बानिक

प्रत्यर्थियों की ओर से सरकारी अधिवक्ता

न्यायमूर्ति अनूप कुमार गोस्वामी – याची के विद्वान् काउंसेल श्री एस. बानिक को सुना गया । दोनों याचिकाओं में प्रत्यर्थी सं. 1 से 5 की ओर से उपस्थित विद्वान् राज्य काउंसेल श्री टी. सी. चुटिया को भी सुना गया ।

2. याची एक रजिस्ट्रीकृत मत्स्य सहकारी सोसाइटी है । अपर उपायुक्त-सहयुक्त-प्रभारी उप खंड अधिकारी, धकुआखाना ने यह उपदर्शित करते हुए चालीस सेला चरीकोरिया मीन महाल की व्यवस्था के लिए तारीख 1 फरवरी, 2018 को निविदा आमंत्रित करते हुए एक सूचना जारी की थी कि चयनित निविदाकर्ताओं को तीन वर्ष की अवधि के लिए व्यवस्थापन मंजूर किया जाएगा । अपर उपायुक्त-सहयुक्त-प्रभारी उप

खंड अधिकारी धकुआखाना द्वारा तारीख 2 मार्च, 2018 को एक शुद्धि पत्र जारी किया गया था जिसमें उसने अतिरिक्त निबंधन और शर्तें निगमित की थीं और निविदाओं को पेश करने की अंतिम तारीख 5 मार्च, 2018 नियत की गई थी जिसे तारीख 12 मार्च, 2018 के रूप में पुन: नियत किया गया था ।

3. निविदा प्रक्रिया में 4 निविदा कर्ताओं ने भाग लिया था और याची को दूसरे उच्चतम बोलीकर्ता के रूप में रखा गया था । यह अभिवचन किया गया है कि यद्यपि याची ने यह उपदर्शित करते हुए एक प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया था कि उसकी सोसाइटी सौ प्रतिशत वाली मत्स्य सहकारी सोसाइटी है और तुलनात्मक विवरणी में यह गलत रूप से उपदर्शित किया गया है कि उसने ऐसा प्रमाणपत्र पेश नहीं किया था । यह प्रकथन किया गया है कि उच्चतर निविदा कर्ता की बोली अविधिमान्य है क्योंकि उसका विधिमान्य रजिस्ट्रीकरण नहीं है इसलिए याची विधिमान्य उच्चतर निविदा कर्ता है ।

4. असम सरकार के मत्स्य विभाग के संयुक्त सचिव द्वारा अपर उपायुक्त-सहयुक्त-प्रभारी उप-खंड अधिकारी, धकुआखाना उप-खंड को संबोधित करते हुए तारीख 1 फरवरी, 2018 की निविदा आमंत्रण सूचना इस आधार पर रद्द करने के लिए तारीख 9 अप्रैल, 2018 को एक डब्ल्यू. टी. संदेश जारी किया गया था कि निविदा आमंत्रण सूचना 3 वर्ष की अवधि के लिए जारी की गई थी । तारीख 9 अप्रैल, 2018 के उपर्युक्त डब्ल्यू. टी. संदेश में यह कहा गया था कि असम मत्स्य नियम, 1953 (जिन्हें आगे संक्षेप में "1953 के नियम" कहा गया है) के नियम 50 के संशोधन को दृष्टिगत करते हुए तारीख 31 मार्च, 2018 (जो 31 मार्च, 2005 लिखी गई है) की सरकारी अधिसूचना सं. फिश 2/2000/171 द्वारा रजिस्ट्रीकृत मत्स्य क्षेत्रों के पट्टे की अवधि अधिकतम सात वर्ष तक विस्तारित की गई है और इसलिए जारी की गई निविदा आमंत्रण सूचना यथा संशोधित उक्त नियम के अनुरूप नहीं है ।

5. 2018 की रिट याचिका (सिविल) सं. 2645 उपर्युक्त तारीख 9 अप्रैल, 2018 के डब्ल्यू. टी. संदेश को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है जिसमें प्रत्यर्थियों को तारीख 1 फरवरी, 2018 की निविदा आमंत्रण

सूचना को तर्कयुक्त रूप से निपटाने के लिए निदेश देने हेतु अनुरोध किया गया है । 2018 की रिट याचिका (सिविल) सं. 2696 तारीख 13 अप्रैल, 2018 की उस निविदा सूचना को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है जो अपर उपायुक्त-सहयुक्त-प्रभारी उप-खंड अधिकारी, धकुआखाना द्वारा सं. 40 सेला चरिकोरिया मीन महाल के व्यवस्थापन के लिए नए सिरे से निविदाएं आमंत्रित करते हुए जारी की गई थी ।

6. इस प्रक्रम पर यह कहा जा सकता है कि जब 2018 की रिट याचिका (सिविल) सं. 2696 में विद्वान् राज्य काउंसेल श्री टी. सी. चुटिया ने तारीख 11 मई, 2005 को मामले की सुनवाई के लिए अनुरोध किया था तो तारीख 3 मई, 2018 को यह उपबंध करते हुए एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था कि याची रिट याचिका में दी गई अपनी दलीलों से प्रभावित हुए बिना निविदा प्रक्रिया में भाग ले सकता है । उक्त आदेश में यह भी कहा गया था कि तारीख 13 अप्रैल, 2018 को निविदा सूचना के अनुसरण में प्राप्त निविदाएं तारीख 11 मई, 2018 तक नहीं खोली जाएंगी । तारीख 11 मई, 2018 को मामला विद्वान् राज्य काउंसेल के अनुरोध पर तारीख 18 मई, 2018 के लिए याची के विद्वान् काउंसेल की उपस्थिति में स्थगित (मुल्तवी) किया गया था और पूर्व में पारित अंतरिम आदेश उस समय तक सतत् रूप से विद्यमान रहा था ।

7. न्यायालय की जानकारी में यह बात लाई गई है कि बाद में तारीख 15 मई, 2018 को निविदाएं खोली गई थीं और श्री बानिक के अनुसार ऐसा इस न्यायालय के आदेश के अतिक्रमण में किया गया है ।

8. न्यायालय के पूछे जाने पर श्री बानिक ने यह बताया है कि उन्हें इस बारे में जानकारी नहीं है कि क्या तारीख 11 मई, 2018 को पारित इस न्यायालय का दूसरा आदेश प्रत्यर्थियों की जानकारी में लाया गया था या नहीं ।

9. किसी न्यायालय द्वारा पारित रोक आदेश के बारे में प्राधिकारियों को संसूचित किया जाना चाहिए और जब तक कि इसे प्राधिकारियों की जानकारी में नहीं लाया जाता है तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि न्यायालय के आदेश की अवहेलना हुई है ।

10. श्री बानिक ने यह दलील दी है कि तारीख 9 अप्रैल, 2018 का आक्षेपित डब्ल्यू. टी. संदेश विधि में मान्य नहीं है क्योंकि 1953 के नियमों के नियम 8(ख) में विस्तारित उपबंध के अनुसार व्यवस्थापन का कोई आदेश आवश्यक रूप से 7 वर्ष से अनधिक के लिए होता है ।

11. 1953 के नियमों का नियम 50 जैसा कि यह विद्यमान है, यह उपबंध करता है कि रजिस्ट्रीकृत मत्स्य-क्षेत्रों में मत्स्य पालन का अधिकार खंड (क) से (छ) में उल्लिखित शर्तों को पूरा करने के अध्यधीन अधिकतम 7 वर्षों के लिए दिया जाएगा । उपबंध में उल्लिखित भाषा स्पष्ट है और इस आशय के लिए असंदिग्ध है कि मत्स्य पालन का अधिकार 7 वर्ष के लिए दिया जा सकता है । प्रथमत: मत्स्य पालन का यह अधिकार राज्य उदार दान के वितरण की स्थापित प्रक्रिया द्वारा प्रदत्त किया जाएगा और जैसाकि वर्तमान मामले में स्पष्ट है कि निविदा आमंत्रण सूचना मत्स्य पालन के अधिकार के प्रयोग के लिए चयनित निविदा कर्ताओं को समर्थ बनाने के लिए व्यवस्थापन के प्रयोजनार्थ जारी की गई थी । कोई निविदा आमंत्रण सूचना 1953 के नियमों के नियम 50 में उल्लिखित उपबंध को दृष्टिगत करते हुए व्यवस्थापन द्वारा मत्स्य पालन का अधिकार प्रदत्त करने के लिए 7 वर्ष से अधिक की अवधि के लिए निविदा आमंत्रित करते हुए जारी नहीं की जा सकती । व्यवस्थापन के मूल आदेश में विस्तार मंजूर करने की शक्ति शर्तों को पूरा करने के अध्यधीन है जैसाकि नियम 8 (ख) में उपदर्शित है और यह पूर्ण रूप से पृथक आधार पर है । यह नहीं कहा जा सकता कि यद्यपि शक्ति 7 वर्ष के लिए मत्स्य पालन के अधिकार की मंजूरी के लिए नियम 50 में उपबंधित है तथापि, मूल व्यवस्थापन आदेश उपर्युक्त अवधि से अनधिक अवधि के लिए होना चाहिए जिससे कि विस्तार को यदि कोई हो, मंजूर किया जा सके ।

12. स्वीकृतत: तारीख 1 फरवरी, 2018 की निविदा आमंत्रण सूचना 3 वर्ष की व्यवस्थापन अवधि तक सीमित है और चूंकि सरकार ने यह दृष्टिकोण अपनाया था कि यह नियम 50 के अनुसरण में होना चाहिए और इसलिए व्यवस्थापन 7 वर्ष की अवधि के लिए प्रस्तावित होना चाहिए इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि तारीख 9 अप्रैल,

2018 का डब्ल्यू. टी. संदेश मनमाने रूप में अथवा 1953 के नियमों के अतिक्रमण में जारी किया गया है । तारीख 13 अप्रैल, 2018 की निविदा आमंत्रण सूचना को इस आधार पर आक्षेपित किया गया है कि यह तारीख 9 अप्रैल, 2018 के डब्ल्यू. टी. संदेश के अनुसरण में जारी की गई थी जो कि स्वत: विधिक रूप से मान्य नहीं थी । जहां डब्ल्यू. टी. संदेश को विधिमान्य ठहराया गया है वहां आवश्यक रूप से तर्कयुक्त परिणाम के रूप में तारीख 13 अप्रैल, 2018 की निविदा आमंत्रण सूचना के लिए आक्षेप विफल होना चाहिए ।

13. उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए मुझे इन रिट याचिकाओं में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और तद्नुसार ये खारिज की जाती हैं । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

(2019) 1 सि. नि. प. 658 **झारखंड**

मयंक गिरि

बनाम

दिव्या गिरि उर्फ दिव्या चौधरी

तारीख 8 अगस्त, 2018

न्यायमूर्ति अपरेश कुमार सिंह और न्यायमूर्ति रत्नाकर भेंगड़ा

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 9 और 11 – हिन्दू विवाह – दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन – पत्नी द्वारा प्रति-दावे में विवाह को अकृत घोषित करने के लिए अनुरोध – पत्नी और उसके माता-पिता द्वारा यह कथन किया जाना कि प्रत्यर्थी का व्यपहरण करके बलपूर्वक और धमकियां देकर विवाह किया गया था – आवेदक द्वारा हिन्दू धर्म के रीति-रिवाजों और

अनुष्ठानों के साथ विवाह को साबित न किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा आवेदन की खारिजी – विचारण न्यायालय का निर्णय उचित होने के कारण निर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

आवेदक-पति द्वारा उपवर्णित मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि पक्षकारों का विवाह तारीख 13 सितंबर, 2007 को दवे दुर्गा मंदिर, गोपाल गंज, बिहार में सम्पन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् पति और पत्नी साथ-साथ रहने लगे और प्रत्यर्थी 6 मास में गर्भवती हो गई । प्रत्यर्थी को 2007 के कोतवाली पुलिस मामला सं. 597 (2007 के जी. आर. मामला सं. 3178) में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रांची के तारीख 19 फरवरी, 2007 के आदेश द्वारा रिहा किया गया था और उसे उसके माता-पिता के सुपुर्द किया गया था और इसके पश्चात् अपीलार्थी के हक में 2008 के ए. बी. ए. सं. 201 में माननीय झारखंड उच्च न्यायालय, रांची द्वारा अग्रिम जमानत मंजूर की गई थी । अपीलार्थी को यह आशंका थी कि उसकी पत्नी के माता-पिता द्वारा उसकी पत्नी का गर्भपात कराया जा सकता है और उसकी पत्नी का जीवन नष्ट हो सकता है । इसलिए अपीलार्थी अपनी पत्नी/प्रत्यर्थी-दिव्या गिरि की अभिरक्षा प्राप्त करना चाहता था । तथापि, प्रत्यर्थी के माता-पिता ने उसे अपीलार्थी के साथ जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया । प्रत्यर्थी का न्यायिक मजिस्ट्रेट, रांची के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन कथन अभिलिखित किया गया था । वाद के लिए वाद-हेतुक तारीख 20 दिसंबर, 2007 को तब उद्भूत हुआ जब उसकी पत्नी/प्रत्यर्थी को उसके माता-पिता के सुपुर्द किया गया और इसलिए अपीलार्थी ने यह अनुरोध किया कि प्रत्यर्थी को दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए निदेश दिया जाए । यह अपील 2008 के एम. टी. एस. सं. 80 में विद्वान् प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रांची द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2014 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलार्थी (पति) द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल किया गया वाद खारिज किया गया है और प्रत्यर्थी (पत्नी) द्वारा विवाह को अकृत और शून्य घोषित करने के लिए प्रति-दावा मंजूर किया गया है । अपील

खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – दोनों काउंसेलों को सुनने और अभिलेख तथा उद्धृत निर्णयों का परिशीलन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि अपीलार्थी ने एक विधिमान्य विवाह का मामला साबित कर दिया है और इसलिए यह न तो शून्य है और न ही पूर्ण रूप से शून्यकरणीय है और न ही इस प्रकार का है जिसे अकृत घोषित किया जा सकता है अपितु यह केवल कतिपय विधिक अपेक्षाओं के अधीन है । इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी की ओर से यह बताने का प्रयास किया गया है कि वह एक कम आयु की लड़की है जिसे विवाह के लिए बलपूर्वक व्यपहृत किया गया था और जिसके लिए बाद में बलात्संग का आरोप जोड़ा गया था और यह बताने का प्रयास किया गया था कि किसी प्रकार से प्रथम दृष्टि में यह एक विधिमान्य विवाह नहीं था । इस न्यायालय के समक्ष पेश किए गए मामले में अन्य पहलुओं के साथ अन्य तीन तथ्यात्मक पहलू मौजूद हैं जो परिणाम को प्रभावित करते हैं और ये इस प्रकार हैं - प्रथमत: अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि घटना के समय लड़की कम आयु की थी अथवा अप्राप्तवय थी और द्वितीयत: साक्ष्य में ऐसा कुछ नहीं आया है जो यह साबित करने वाला हो कि हिन्दू विवाह अनुष्ठानों के अधीन यथा अपेक्षित रीतियों या प्रक्रियाओं द्वारा कोई विवाह सम्पन्न हुआ था । अपीलार्थी द्वारा अवलंब लिए गए चारों निर्णयों का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी का मामला इस सीमा तक उन मामलों के जो उसके द्वारा उद्धृत किए गए हैं, समान नहीं है क्योंकि उक्त मामलों में सभी लड़कियां अप्राप्तवय थीं तथापि, उन सभी ने यह कहा था कि घटना के समय उन्होंने अपनी इच्छा और खुशी से घटना में भाग लिया था । वर्तमान मामले में लड़की ने विचारण न्यायालय में की कार्यवाहियों में यह कहा है कि उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध ले जाया गया था और उसने उसके बाद कभी भी अपीलार्थी के साथ रहने की इच्छा व्यक्त नहीं की थी । न्यायालय के समक्ष के अपीलार्थी का मामला उद्धृत निर्णयों में सम्मति के बिन्दु से पृथक् है भले ही घटना के आरंभिक समय के बारे में हो या उसके पश्चात् । माननीय न्यायालय द्वारा दिए गए उपर्युक्त उत्तरों पर विचार करने पर प्रथमदृष्ट्या यह स्पष्ट होता है

कि अपीलार्थी का यह दावा कि उसने एक विधिमान्य विवाह किया है, सही है और इसलिए दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए उसका दावा पूर्णतया न्यायोचित है । यह हो सकता है कि सम्मति का मुद्दा न हो तथापि, अपीलार्थी द्वारा अवलंब लिए गए सभी चारों निर्णयों में ऐसी अप्राप्तवय लड़कियों के मामले पर विचार किया गया था जिन्होंने अपनी सम्मति दी थी अथवा वे अभियुक्त-व्यक्तियों के साथ स्वेच्छा से गई थीं । वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी दिव्या चौधरी ने अभिलेख पर यह साक्ष्य दिया है कि उसे बलपूर्वक ले जाया गया था और उसकी सम्मति से विवाह नहीं हुआ था जिसके बारे में अपीलार्थी द्वारा दावा किया गया है । अपीलार्थी ने यह भी दलील दी है कि प्रत्यर्थी के आचरण से उसकी सम्मति साबित होती है तथापि, क्या न्यायालय उसके विरोध को देखते हुए अब यह उपधारित कर सकता है कि एक विधिमान्य विवाह हुआ था और क्या अपीलार्थी के दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन करा सकता है । इस बारे में उत्तर नकारात्मक है । एक अन्य पहलू भी है जो अधिक महत्वपूर्ण है और वह यह है कि क्या वस्तुत: विवाह हुआ था ? सहयोग राशि के सिवाय ऐसा कोई भी साक्ष्य नहीं है कि हिन्दू धर्म द्वारा अपनाई गई धार्मिक रीतियों और अनुष्ठानों के अनुसार विवाह हुआ था । अत: कंवल राम वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के अनुसार यह नहीं कहा जा सकता कि विवाह रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों के साथ सम्पन्न हुआ था । अत: प्रश्न यह है कि क्या किसी विवाह के अभाव में अपीलार्थी के हक में दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन किया जा सकता है, निश्चित रूप से नहीं । न्यायालय द्वारा ऊपर उल्लिखित तर्कों के आधार पर यह पहले ही उपदर्शित किया जा चुका है कि प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन है कि उसका बलपूर्वक व्यपहरण किया गया था और इसलिए घटना में कोई सहमति नहीं दी गई थी । बाद में उसने अपीलार्थी के साथ जाने से इनकार कर दिया । चूंकि न्यायालय के समक्ष का मामला स्वत: सहमति के बिन्दु पर उद्धृत चारों निर्णयों से भिन्न है इसलिए ये निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस मामले को लागू नहीं होते हैं । अन्य परिस्थिति जिसका ऊपर उद्धृत चारों मामलों में उल्लेख नहीं है, विवाह रीतियों और अनुष्ठानों के संबंध में

कोई साक्ष्य न होने के संबंध में है । अपीलार्थी ने रीतियों और अनुष्ठानों के लिए कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है, अत: निष्कर्ष यह है कि कोई विवाह नहीं हुआ था । तद्नुसार ऊपर उल्लिखित दोनों विवाद्यकों का जो कुटुंब न्यायालय द्वारा विरचित किए गए हैं, कुटुंब न्यायालय द्वारा सही उत्तर दिया गया है और इसमें कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है । (पैरा 16, 17, 22, 26 और 28)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	2013 क्रिमिनल ला जर्नल 3458 (दिल्ली) (पूर्ण न्यायपीठ) : **न्यायालय स्वप्रेरणा से (लज्जा देवी** बनाम **राज्य)** ;	11, 21, 23, 24, 25
[2012]	ए. आई. आर. 2012 मद्रास 62 (पूर्ण न्यायपीठ) : **टी. शिव कुमार** बनाम **पुलिस निरीक्षक** ;	11, 20, 23, 24, 25
[2006]	ए. आई. आर. 2006 दिल्ली 37 : **मनीष सिंह** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी, राज्य क्षेत्र दिल्ली सरकार और अन्य** ;	11
[1999]	(1999) 1 डी. एम. सी. 634 : **नीतू सिंह** बनाम **राज्य और अन्य** ;	11, 18
[1966]	ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 614 : **कंवल राम और अन्य** बनाम **हिमाचल प्रदेश प्रशासन** ।	15, 17, 26

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की अपील सं. 34.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री दीपक कुमार भारती

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री सिरजा चौधरी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रत्नाकर भेंगड़ा ने दिया ।

न्या. भेंगड़ा – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना गया ।

2. यह अपील 2008 के एम. टी. एस. सं. 80 में विद्वान् प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रांची द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2014 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलार्थी (पति) द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल किया गया वाद खारिज किया गया है और प्रत्यर्थी (पत्नी) द्वारा विवाह को अकृत और शून्य घोषित करने के लिए प्रति-दावा मंजूर किया गया है ।

3. आवेदक-पति द्वारा उपवर्णित मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि पक्षकारों का विवाह तारीख 13 सितंबर, 2007 को दवे दुर्गा मंदिर, गोपाल गंज, बिहार में सम्पन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् पति और पत्नी साथ-साथ रहने लगे और प्रत्यर्थी 6 मास में गर्भवती हो गई । प्रत्यर्थी को 2007 के कोतवाली पुलिस मामला सं. 597 (2007 के जी. आर. मामला सं. 3178) में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रांची के तारीख 19 फरवरी, 2007 के आदेश द्वारा रिहा किया गया था और उसे उसके माता-पिता के सुपुर्द किया गया था और इसके पश्चात् अपीलार्थी के हक में 2008 के ए. बी. ए. सं. 201 में माननीय झारखंड उच्च न्यायालय, रांची द्वारा अग्रिम जमानत मंजूर की गई थी । अपीलार्थी को यह आशंका थी कि उसकी पत्नी के माता-पिता द्वारा उसकी पत्नी का गर्भपात कराया जा सकता है और उसकी पत्नी का जीवन नष्ट हो सकता है । इसलिए अपीलार्थी अपनी पत्नी/प्रत्यर्थी-दिव्या गिरि की अभिरक्षा प्राप्त करना चाहता था । तथापि, प्रत्यर्थी के माता-पिता ने उसे अपीलार्थी के साथ जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया । प्रत्यर्थी का न्यायिक मजिस्ट्रेट, रांची के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन कथन अभिलिखित किया गया था । वाद के लिए वाद-हेतुक तारीख 20 दिसंबर, 2007 को तब उद्भूत हुआ जब उसकी पत्नी/प्रत्यर्थी को उसके माता-पिता के सुपुर्द किया गया और इसलिए अपीलार्थी ने यह अनुरोध किया कि प्रत्यर्थी को दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए

निदेश दिया जाए ।

4. प्रत्यर्थी ने न्यायालय में उपस्थित होकर अपना लिखित कथन-सहयुक्त-प्रति-दावा फाइल किया । प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी द्‌वारा किए गए प्रकथनों से इनकार किया । यह भी कहा गया था कि वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि अभिकथित विवाह के समय प्रत्यर्थी अप्राप्तवय थी और उसके जन्म की तारीख 31 जनवरी, 1992 है । तारीख 31 अगस्त, 2007 को अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी का गुरूनानक स्कूल, रांची से व्यपहरण कर लिया था जहां वह कक्षा 9 में अध्ययन कर रही थी । प्रत्यर्थी लगभग ढाई मास तक अपीलार्थी की बलपूर्वक अभिरक्षा में रही । अपीलार्थी उसे विभिन्न स्थानों पर ले गया था और उसे मानसिक और शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया गया था । प्रत्यर्थी के पिता ने अपीलार्थी और अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखाई थी जो पुलिस थाना कोतवाली में 2007 के मामला सं. 597 के रूप में भारतीय दंड संहिता की धारा 363, 366-क/34 के अधीन दर्ज की गई थी । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को यह धमकी दी थी कि यदि वह उसकी सलाह के अनुसार नहीं चलेगी तो उसके भाई और माता-पिता सहित उसकी हत्या कर दी जाएगी । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी ने मजबूर होकर अनेक सादे कागजों और पत्रों पर अपने हस्ताक्षर किए थे । पुलिस ने प्रत्यर्थी को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रांची के न्यायालय में पेश किया था और वहां से उसे महिला आश्रम भेज दिया गया था और इसके पश्चात् प्रत्यर्थी को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रांची के न्यायालय द्‌वारा उसके माता-पिता के सुपुर्द किया गया था । अपीलार्थी द्‌वारा प्रत्यर्थी के साथ बार-बार बलात्संग किए जाने के कारण वह गर्भवती हो गई थी तथापि, 22 दिसंबर, 2007 को प्रचुर मात्रा में रक्तस्राव के कारण उसका गर्भपात हो गया था । प्रत्यर्थी को मामले के लंबन के संबंध में स्थानीय समाचारपत्र 'प्रभात खबर' से पता चला और इसके पश्चात् वह न्यायालय में उपस्थित हुई । अपीलार्थी द्‌वारा पक्षकारों के बीच विवाह के संबंध में किए गए कथन मिथ्या हैं और आधार रहित हैं तथा प्रत्यर्थी का अपीलार्थी के साथ कभी भी विवाह नहीं हुआ और न ही प्रत्यर्थी के माता-पिता ने कभी भी प्रत्यर्थी के विवाह के लिए अपनी सहमति दी ।

इस प्रकार पक्षकारों के बीच कोई विवाह नहीं हुआ था । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अभिलिखित प्रत्यर्थी का कथन अपीलार्थी के भय और दबाव में किया गया था । अतः अपीलार्थी दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए कोई डिक्री प्राप्त करने का हकदार नहीं है और इसलिए प्रत्यर्थी ने यह अनुरोध किया कि अपीलार्थी द्वारा अभिकथित विवाह अकृत और शून्य घोषित किया जाए ।

5. विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने अवधारण के लिए निम्नलिखित चार विवाद्यक विरचित किए :–

(i) क्या यथा प्ररुपित वाद ग्रहण किए जाने योग्य है ?

(ii) क्या पक्षकारों के बीच सम्पन्न विवाह विधिमान्य है और क्या प्रत्यर्थी, आवेदक की विधिक रूप से विवाहिता पत्नी है या नहीं ?

(iii) क्या आवेदक दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किसी डिक्री के लिए हकदार है अथवा क्या प्रत्यर्थी विवाह को अकृत कराने की घोषणा के लिए हकदार है ?

(iv) क्या आवेदक दावा किए गए रूप में किसी अनुतोष के लिए हकदार है ?

6. विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने प्रथमतः विवाद्यक सं. (ii) और (iii) पर विचार किया क्योंकि दोनों विवाद्यक एक दूसरे से संबंधित हैं और अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । अपीलार्थी की ओर से किसी साक्षी की परीक्षा नहीं कराई गई और अपीलार्थी की ओर से केवल दस्तावेजों को चिह्नांकित और प्रदर्शित किया गया और ये दस्तावेज दोनों पक्षकारों के फोटो-चित्र हैं जिन्हें प्रदर्श-1 से 1/ई के रूप में चिह्नांकित किया गया है, 2007 के जी. आर. मामला सं. 3178 में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अभिलिखित प्रत्यर्थी के कथन की प्रमाणित प्रति प्रदर्श-2 है, दवे मंदिर, गोपाल गंज द्वारा जारी किया गया विवाह का प्रमाणपत्र प्रदर्श-3 है और तारीख 15 नवंबर, 2007 के दैनिक जागरण समाचारपत्र की कतरन की फोटो-प्रति प्रदर्श-4 है ।

7. प्रत्यर्थी ने अपने पक्षकथन के समर्थन में कुल तीन साक्षियों की परीक्षा कराई । दिलीप कुमार चौधरी आर. डब्ल्यू.-1 प्रत्यर्थी का पिता है । उसने अपने साक्ष्य में यह कहा है कि अपीलार्थी मयंक गिरी ने तारीख 31 अगस्त, 2007 को उसकी पुत्री को व्यपहृत किया था और उसने पुलिस थाना कोतवाली में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई थी जिसे 2007 के पुलिस कोतवाली मामला सं. 597 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था । उस समय उसकी पुत्री की आयु 15 वर्ष और 7 मास थी । उसने अपने साक्ष्य में यह भी कहा है कि न्यायालय के आदेश द्वारा तारीख 20 दिसंबर, 2007 को प्रत्यर्थी/पुत्री को उसके सुपुर्द किया गया था । उस समय प्रत्यर्थी ने उसे यह बताया था कि अपीलार्थी द्वारा उसके साथ बार-बार बलात्संग किया गया था जिसके परिणामस्वरूप वह गर्भवती हो गई थी । तथापि, अत्यधिक रकतस्राव के कारण उसका गर्भपात हो गया था । अपीलार्थी द्वारा इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा नहीं की गई और इसलिए उसका सम्पूर्ण साक्ष्य अनाक्षेपित और अविवादित रहा है ।

8. माला चौधरी आर. डब्ल्यू.-2 प्रत्यर्थी की माता है । उसने अपने साक्ष्य में यह कहा है कि अपीलार्थी ने तारीख 31 अगस्त, 2007 को उसकी पुत्री का व्यपहरण किया था और उस समय प्रत्यर्थी की आयु लगभग 15 वर्ष और 7 मास थी । इसके पश्चात् उसे फोन पर यह धमकियां दी गई थीं कि प्रत्यर्थी के पिता को जान से मार दिया जाएगा क्योंकि अपीलार्थी का पिता एक बड़ा नेता है । उसने अपने साक्ष्य में यह भी कहा है कि 2007 का कोतवाली पुलिस मामला सं. 597 (2007 की जी. आर. सं. 3178) के रूप में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत कराई गई थी और उसके पश्चात् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रांची द्वारा प्रत्यर्थी को उनके सुपुर्द किया गया था । उसने अपने साक्ष्य में यह भी कहा है कि उसकी पुत्री ने उसे यह बताया था कि अपीलार्थी ने उसके साथ बार-बार बलात्संग किया था जिसके परिणामस्वरूप वह गर्भवती हो गई थी । तथापि, प्रचुर मात्रा में रक्तस्राव के कारण उसका गर्भपात हो गया था । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कहा है कि वह 2007 से पूर्व अपीलार्थी मयंक गिरि को नहीं जानती थी और जब मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया

तो अपीलार्थी और उसके पिता के बारे में जानकारी हुई ।

9. प्रत्यर्थी दिव्या गिरि आर. डब्ल्यू.-3 के रूप में स्वयं पेश हुई है । उसने अपने साक्ष्य में यह कहा है कि वह तारीख 31 अगस्त, 2007 को गुरू नानक स्कूल, रांची में अध्ययन करती थी और उस समय उसकी आयु 15 वर्ष और 7 मास थी । जब वह 10.00 बजे पूर्वाह्न अपने घर वापस आ रही थी और वह अपने पिता के आने की प्रतीक्षा कर रही थी तो उसी दौरान एक लाल रंग की कार आई और मयंक ने बलपूर्वक उसे कार के अंदर घसीट लिया । उसके साथ एक लड़का भी था । इसके पश्चात् अपीलार्थी ने उसकी गर्दन पकड़ ली और उसे जान से मारने की धमकी दी । उसने यह भी कहा है कि उसके मुख पर एक रूमाल रख दिया गया था जिसके कारण वह मुर्छित (बेहोश) हो गई थी । उसके पिता ने पुलिस थाना हिन्दपीरी में 2007 के मामला सं. 597 के रूप में एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई थी । जब उसकी बेहोशी दूर हुई तो उसने स्वयं को एक कक्ष में पाया और मयंक टेलीफोन पर बात करते हुए यह कह रहा था "पिता का कार्य कर दिया गया है।" जब उसने मयंक से यह कहा कि वह अपने घर जाना चाहती है तो मयंक ने उस पर हमला करते हुए यह कहा कि वह उसके माता-पिता से धन ऐंठना चाहता है । उसने यह भी कहा कि मयंक ने उसे नकल करने के लिए अनेक प्रेम पत्र दिए और उसके पश्चात् उसने उन पर हस्ताक्षर करने को कहा और उसके पश्चात् उसे गोपाल गंज के मंदिर ले जाया गया था । उसे बाल पकड़ कर घसीटा गया था और अनेक फोटो-चित्र लिए गए थे तथापि, उनके बीच कोई विवाह संपन्न नहीं हुआ था । इसके पश्चात् पुलिस ने अपीलार्थी के पिता को गिरफ्तार किया था और अपीलार्थी ने उससे यह बयान देने के लिए कहा कि वह अपनी इच्छा से अपीलार्थी के साथ गई थी और यह भी कहा था कि ऐसा बयान न देने पर उसके सम्पूर्ण कुटुंब की हत्या कर दी जाएगी । उसने यह भी कथन किया है कि उसे चार-पांच लड़कों के सुपुर्द किया गया था जो उसे न्यायालय ले गए थे और उसके पश्चात् उसे रिमांड होम भेज दिया गया था । तारीख 28 नवंबर, 2007 को उसकी चिकित्सीय परीक्षा हुई थी और उसके पश्चात् उसे उसके माता-पिता के सुपुर्द किया गया था । उसने अपने

साक्ष्य में यह भी कहा है कि अपीलार्थी और उसके कुटुंब के सदस्य आपराधिक पृष्ठभूमि के हैं और असामाजिक तत्व हैं । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा के पैरा 19 में यह कहा है कि मजिस्ट्रेट के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन उसका कथन बलपूर्वक कराया गया था क्योंकि उसे और उसके सम्पूर्ण कुटुंब की हत्या करने की धमकी दी गई थी । तथापि, उसने यह कहा है कि उसने इस संबंध में कोई पृथक् मामला संस्थित नहीं किया था । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा के पैरा 22 में यह भी कहा है कि वह किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छा पूर्वक नहीं गई थी ।

10. प्रत्यर्थी की ओर से निम्नलिखित दस्तावेजों को प्रदर्शों के रूप में चिह्नांकित कराया गया है । ये दस्तावेज प्रदर्श-ए हैं जिनमें 2007 के पुलिस थाना मामला सं. 597 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति है जो तारीख 31 अगस्त, 2007 को भारतीय दंड संहिता की धारा 363, 366-क/34 के अधीन लिखाई गई थी, प्रदर्श-बी उपर्युक्त धाराओं के अधीन आरोप पत्र की प्रमाणित प्रति है जो अपीलार्थी मयंक गिरि और उसके पिता कामेश्वर गिरि के विरुद्ध दाखिल की गई है, प्रदर्श-सी चिकित्सीय रिपोर्ट है जो प्रत्यर्थी की आयु के अवधारण के लिए गठित चिकित्सीय बोर्ड द्वारा जारी की गई है और जिसमें उसकी आयु 16-17 वर्ष के बीच बताई गई थी । प्रदर्श-डी जन्म प्रमाणपत्र की प्रति है जो गुरू नानक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रांची द्वारा जारी की गई है जिसमें यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी दिव्या चौधरी पुत्री श्री दिलीप कुमार चौधरी के जन्म की तारीख 31 जनवरी, 1992 के रूप में उल्लिखित है और वह कक्षा 11-ए की विद्यार्थी/छात्रा है । प्रदर्श-ई प्रत्यर्थी का जन्म प्रमाणपत्र है जो झारखंड सरकार के योजना और विकास विभाग द्वारा जारी किया गया है जिसमें उसके जन्म की तारीख 31 जनवरी, 1992 दर्शित की गई है । प्रदर्श-एफ उस आवेदन की प्रमाणित प्रति है जो प्रत्यर्थी की माता द्वारा अपनी पुत्री की अभिरक्षा के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रांची के समक्ष फाइल किया गया था । प्रदर्श-जी, ए. सी. जे., रांची के तारीख 21 नवंबर, 2007 के आदेश-पत्रक की प्रमाणित प्रति है जो 2009 के सेशन विचारण मामला सं. 275 में पारित किया गया है और यह सेशन विचारण मामला सं. 275, 2007 के पुलिस थाना कोतवाली

मामला सं. 597 से उद्भूत हुआ है । इस आदेश द्वारा प्रत्यर्थी को चिकित्सीय परीक्षा के लिए भेजा गया था । प्रदर्श जी/1 इसी मामले में यान की निर्मुक्ति के लिए तारीख 29 नवंबर, 2007 को पारित आदेश-पत्रक की प्रमाणित प्रति है । प्रदर्श एच प्रत्यर्थी के आवेदन की प्रमाणित प्रति है जो उसने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रांची के न्यायालय में यह अनुरोध करते हुए फाइल किया गया था कि वह अपने माता-पिता के साथ जाना चाहती है । प्रदर्श आई प्रत्यर्थी के पिता द्वारा 2009 के सेशन विचारण मामला सं. 275 में दिए गए अभिसाक्ष्य की प्रमाणित प्रति है, प्रदर्श आई/1 प्रत्यर्थी द्वारा 2009 के सेशन विचारण मामला सं. 275 में दिए गए अभिसाक्ष्य की प्रमाणित प्रति है जिसमें उसने यह कहा है कि अपीलार्थी ने उसका व्यपहरण करके उसके साथ बलात्संग किया था । प्रदर्श जे चिकित्सीय बोर्ड, रांची द्वारा जारी चिकित्सा रिपोर्ट की प्रमाणित प्रति है और प्रदर्श जे/ए संज्ञान लेने के लिए आदेश-पत्रक की प्रमाणित प्रति है, प्रदर्श के भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन आरोप को जोड़ने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन फाइल किए गए आवेदन की प्रति है ।

अपीलार्थी द्वारा दी गई दलीलें

11. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने निम्न आधारों पर निचले न्यायालय के निर्णय को आक्षेपित किया है कि विद्वान् विचारण न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहा है कि हिन्दू अधिनियम, 1955 की धारा 11 के अधीन कोई विवाह तभी शून्य होगा जब धारा 5 में विनिर्दिष्ट किसी शर्त के उल्लंघन में विवाह किया गया हो और वे शर्तें ये हैं – (i) विवाह के समय किसी पक्षकार की पति/पत्नी जीवित न हो (iv) पक्षकार किसी प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्री के अन्तर्गत न आते हों जब तक कि उनमें से प्रत्येक को लागू होने वाली रूढ़ि या रिवाज दोनों के बीच विवाह को अनुज्ञात न करते हों, और (v) पक्षकार एक दूसरे के सपीनदास न हों जब तक कि उनमें से प्रत्येक को लागू रूढ़ि और रिवाज दोनों के बीच किसी विवाह को अनुज्ञात न करते हों । वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी द्वारा यह उपदर्शित करने के लिए अभिलेख

पर कोई सामग्री पेश नहीं की गई है कि उपर्युक्त शर्तों में से किसी शर्त का विवाह को शून्य और अकृत बनाने के लिए उल्लंघन किया गया है और इस प्रकार आक्षेपित निर्णय विधितः त्रुटिपूर्ण है तथा अपास्त किए जाने योग्य है । विचारण न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहा है कि प्रत्यर्थी का प्रति-दावा विधितः ग्रहण किए जाने योग्य नहीं था और खारिज किए जाने योग्य था क्योंकि हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 23क के अधीन प्रत्यर्थी की अर्जी तभी ग्रहण की जा सकती है जब वह निम्नलिखित मानदंडों को पूरा करती हो – (i) हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 23क के अधीन प्रत्यर्थी अपीलार्थी की क्रूरता, जारकर्म या अधित्यजन साबित करने के लिए समर्थ है । (ii) हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 11 के अधीन विवाह केवल तभी शून्य घोषित किया जाएगा जब हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 5 के खंड (i), (iv) और (v) का उल्लंघन किया गया हो । (iii) हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 12 के अधीन विवाह को शून्यकरणीय तभी घोषित किया जाएगा जब खंड 1(क), (ख), (ग) या (घ) में उपवर्णित मानदंड पूरा न हुआ हो और चूंकि प्रत्यर्थी किसी साक्ष्य या अभिवचनों द्वारा यह साबित या स्थापित नहीं कर सकी है कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 23क, धारा 11 और धारा 12 के अधीन उल्लिखित विधि की अपेक्षा पूरी कर दी गई है इसलिए प्रत्यर्थी को प्रति-दावा के जरिए कोई अनुतोष मंजूर करने के लिए कोई आधार मौजूद नहीं था और इसलिए आक्षेपित निर्णय विधितः त्रुटिपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है । विद्वान् विचारण न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहा है कि प्रत्यर्थी ने कोई दांडिक मामला फाइल नहीं किया था अपितु उसके पिता द्वारा मामला फाइल किया गया था और उसने बलात्संग के बारे में पुलिस के समक्ष कोई कथन नहीं किया है और न ही उसकी चिकित्सीय रिपोर्ट से किसी क्षति का संकेत मिलता है और न ही प्रत्यर्थी ने विवाह-विच्छेद के लिए अथवा विवाह को शून्य या शून्यकरणीय घोषित करने के लिए कोई पृथक् वैवाहिक मामला फाइल किया था और इसलिए आक्षेपित निर्णय विधितः त्रुटिपूर्ण है और अपास्त किए जाने

योग्य है । विद्वान् विचारण न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहा है कि प्रत्यर्थी ने तारीख 31 अगस्त, 2007 से तारीख 18 दिसंबर, 2007 के बीच स्वयं को दिव्या गिरि पत्नी अपीलार्थी मयंक गिरि के रूप में उपदर्शित किया है और यह बात उसके दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के कथन से तथा उसके तारीख 18 दिसंबर, 2007 के आवेदन (प्रदर्श एच) से स्पष्ट होती है और विचारण न्यायालय ने ऐसे महत्वपूर्ण साक्ष्य की उपेक्षा करके विधि की गंभीर गलती की है और इसलिए आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है । विद्वान् विचारण न्यायालय आर. डब्ल्यू. 2 की इस प्रतिपरीक्षा के पैरा 62 पर भी विचार करने में विफल रहा है कि न्यायालय ने तारीख 29 दिसंबर, 2007 को प्रत्यर्थी को उसके माता-पिता के साथ जाने के लिए आदेश किया था तथापि, वह उनके साथ जाने की इच्छुक नहीं थी और जब उसे यह आश्वासन दिया गया कि उसे अपीलार्थी के साथ वापस भेज दिया जाएगा तो प्रत्यर्थी तीन सप्ताह के पश्चात् तारीख 20 दिसंबर, 2007 को अपने माता-पिता के साथ अपने घर गई थी जिससे स्पष्टतया यह उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी पर कोई बल प्रयोग नहीं किया गया था या दबाव नहीं डाला गया था और वह पूर्ण रूप से स्वयं अपनी इच्छा से कार्य कर रही थी । विद्वान् विचारण न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहा है कि प्रत्यर्थी ने तारीख 20 दिसंबर, 2007 के पश्चात् भी अपीलार्थी के विरुद्ध बलात्संग अथवा विवाह-विच्छेद के लिए कोई मामला फाइल नहीं किया था और उसने अपने पूर्वतर कथन के खंडन में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन कोई कथन नहीं किया अपितु तीन वर्ष की अवधि बीत जाने के पश्चात् पहली बार तारीख 14 सितंबर, 2010 को दांडिक मामले में यह कथन किया कि उसका व्यपहरण करके उसके साथ बलात्संग किया गया था और ऐसा प्रत्यर्थी के माता-पिता द्वारा अपीलार्थी से बदला लेने के कारण किया गया था क्योंकि तारीख 29 अप्रैल, 2008 को अपीलार्थी ने तब दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए वाद फाइल किया था जब 4 मास के पश्चात् भी प्रत्यर्थी, अपीलार्थी के पास वापस नहीं आई । विद्वान् विचारण

न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहा कि प्रत्यर्थी ने एक मिथ्या कहानी गढ़ी थी और यह बात इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि यद्यपि उसने गर्भपात/रक्तस्राव के बारे में कथन किया है तथापि, उसने उक्त अभिकथनों को साबित करने के लिए चिकित्सीय प्रमाणपत्र की कोई एक पर्ची भी उपाबद्ध नहीं की, यद्यपि उन्होंने बलात्संग का अभिकथन किया था तथापि, चिकित्सीय प्रमाणपत्र में कोई क्षति या बलात्संग किए जाने का कोई उल्लेख नहीं है और दांडिक मामले में भी आरंभत: बलात्संग का कोई आरोप विरचित नहीं किया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय इस बात पर विचार करने में भी विफल रहा कि प्रत्यर्थी और उसके साक्षियों ने शपथपत्र पर दिए गए साक्ष्य में यह अनुरोध किया है कि विवाह अवैध घोषित किया जाए और यही अनुरोध लिखित कथन में भी किया गया है तथापि, उन्होंने विवाह के बारे में विशिष्ट उल्लेख नहीं किया है और न ही विधि के ऐसे किसी उपबंध का निर्देश किया है जिसके अधीन वे विवाह को अकृत कराना चाहते थे और इसलिए प्रत्यर्थी द्वारा यथा ईप्सित कोई अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता और इसलिए यह उदाहरणात्मक खर्चे के साथ खारिज किए जाने योग्य है । विद्वान् विचारण न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहा है कि अपीलार्थी ने अपना यह विधिमान्य पक्षकथन साबित कर दिया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने युक्तियुक्त कारण के बिना अपीलार्थी-पति के साथ रहना बंद कर दिया है और ऐसा मुख्य रूप से पक्षकारों के बीच विवाह के अननुमोदन के कारण हुआ था क्योंकि वे भिन्न-भिन्न जातियों के हैं और उन्होंने अपने घर से भाग कर प्रेम-विवाह किया था जो कि विधि के अधीन अथवा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अधीन कोई अपराध नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहा है कि आर. डब्ल्यू. 3 दिव्या चौधरी **उर्फ** दिव्या गिरि अप्राप्तवय नहीं थी और उसने वयस्कता की आयु प्राप्त कर ली थी क्योंकि उसने अपनी आयु 22 वर्ष बताई थी और यह बात दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन किए गए उसके कथन से स्पष्ट होती है । उसने मयंक गिरि के साथ विवाह किया था और वह उसकी पत्नी

के रूप में रहना चाहती थी तथापि, विचारण न्यायालय ने 3 वर्ष के पश्चात् भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन आवेदन आमंत्रित करके यह उपदर्शित किया कि वह अपीलार्थी के प्रति पूर्ण रूप से पक्षपातपूर्ण और अऋजु है और इसलिए आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी के वादपत्र को साक्ष्य के सारभूत भाग के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता जब तक कि यह साक्षियों के मौखिक साक्ष्य द्वारा समर्थित न हो । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा शपथपत्र पर साक्ष्य फाइल करने पर उसके कथन को यह कहकर इनकार करके कि वादपत्र में किए गए कथनों को साक्ष्य में नहीं पढ़ा जाएगा, अधिकारिता के प्रयोग संबंधी त्रुटि की है क्योंकि यह कुटुंब न्यायालय की धारा 14 और 16 के प्रतिकूल है । विद्वान् विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष कि प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन किया गया कथन साक्ष्य के सारभूत भाग के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता, त्रुटिपूर्ण, अनुचित और विधिक आज्ञा के विरुद्ध है क्योंकि मौखिक साक्ष्य पर सदैव ही दस्तावेजी साक्ष्य अभिभावी होती है और उसका अधिक महत्व होता है जिसे त्यक्त नहीं किया जा सकता । विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाह के फोटो-चित्रों और समाचारपत्र की कतरन का अवलंब नहीं लिया है और प्रत्यर्थी द्वारा न्यायालय में इस संबंध में किए गए मौखिक कथन के मुकाबले इस साक्ष्य को अधिक महत्व दिया है कि उस पर दबाव दिया गया था और उसके साथ बलात्संग किया गया था और उसने अपीलार्थी के भय से ऐसा बयान दिया था और यह बात पूर्णतया त्रुटिपूर्ण है और इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए खारिज किए जाने योग्य है कि आज की तारीख तक प्रत्यर्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन किए गए कथन का खंडन नहीं किया है और न ही उसने अपीलार्थी के विरुद्ध बलात्संग और धमकी देने के लिए कोई पृथक् मामला फाइल किया है और इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थी ने न्यायालय में प्रथम बार अपना कथन परिवर्तित किया है जिसकी विचारण न्यायालय द्वारा

सतर्कतापूर्वक संवीक्षा की जानी चाहिए थी और अपीलार्थी द्वारा पेश किए गए दस्तावेजी साक्ष्य के ऊपर अधिमान नहीं दिया जाना चाहिए था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य को खारिज करके विधि की त्रुटि की है क्योंकि यह कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 14 के प्रतिकूल है जो यह उपबंधित करती है कि कुटुंब न्यायालय साक्ष्य के रूप में ऐसी कोई रिपोर्ट, कथन, दस्तावेज, इत्तिला या सामग्री प्राप्त कर सकेगा जो उसकी राय में किसी विवाद को प्रभावी रूप से निपटाने के लिए सहायता करती हो भले ही वह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अधीन अन्यथा सुसंगत या ग्रहण किए जाने योग्य हो या नहीं और इसलिए विचारण न्यायालय का इस बारे में निष्कर्ष सही नहीं है कि अपीलार्थी द्वारा पेश किया गया साक्ष्य, साक्ष्य का सारभूत भाग नहीं है, प्रत्यर्थी के मौखिक कथन को अपीलार्थी के दस्तावेजी साक्ष्य के ऊपर अधिमानता दी गई है और इसलिए प्रत्यर्थियों के साक्षियों के ऐसे साक्ष्य को विधित: महत्व नहीं दिया जा सकता और यह खारिज किए जाने योग्य है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके विधि की गलती की है कि चूंकि प्रत्यर्थी अप्राप्तवय थी और उसके माता-पिता ने अपनी कोई सहमति नहीं दी थी इसलिए उसका विवाह अकृत और शून्य था क्योंकि हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन अप्राप्तवय के साथ विवाह शून्यकरणीय है न कि शून्य, जब तक कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 11 के अधीन यथा अधिकथित शर्तें पूरी न हों और इसलिए विवाह को अकृत और शून्य अभिनिर्धारित किए जाने वाला आक्षेपित निर्णय विधिक आज्ञा के विरुद्ध है और अपास्त किए जाने योग्य है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष न निकालकर गंभीर त्रुटि की है कि प्रत्यर्थी और उसके साक्षियों का साक्ष्य गढ़ा हुआ और सोच विचार कर पेश किया गया है क्योंकि फोटो-चित्रों में प्रत्यर्थी पूर्ण रूप से तरो-ताज़ा, प्रसन्नचित्त और अच्छे कपड़े पहने हुए दिखाई देती है और किसी ने फोटो लेने से पूर्व उसके बालों को संवारा था और फोटो-चित्रों में उसका सम्पूर्ण श्रृंगार दिखाई देता है और यह बात प्रत्यर्थी और उसके साक्षियों के कथनों के महत्व को समाप्त कर देती है

और इस प्रकार उसके द्वारा भय और दबाव रहित मुद्रा में फोटो खिंचवाना उसके कथन को झुठलाता है । विद्वान् विचारण न्यायालय यह अवेक्षा करने में भी विफल रहा है कि प्रत्यर्थी फोटो-चित्रों में अपीलार्थी की जो कमजोर और दुर्बल दिखाई देता है, अपेक्षा अधिक प्रसन्न और स्वस्थचित्त दिखाई देती है और इसलिए अपीलार्थी की ओर से किसी शारीरिक हमले या दबाव की कहानी प्रत्यर्थियों और उनके साक्षियों के साक्ष्य को असंभव बना देती है और इसलिए अविश्वसनीय है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने इस बात पर भी विचार नहीं किया कि प्रत्यर्थी 3 मास से भी अधिक की अवधि तक अपीलार्थी के साथ यात्रा करती रही थी तथापि, उसने किसी भी स्थान पर कोई शोर नहीं मचाया और न ही उसने भागने का प्रयास किया जिससे यह उपदर्शित होता है कि वह स्वेच्छा से और अपनी मर्जी से अपीलार्थी के साथ रही थी और व्यपहरण और किसी बल प्रयोग का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है । अत: भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 को दृष्टिगत करते हुए उसके आचरण से यह उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी के साथ नातेदारी निभाने में उसकी सहमति थी । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अपीलार्थी को साक्ष्य पेश करने और आर. डब्ल्यू. 1 की प्रतिपरीक्षा करने का समुचित अवसर नहीं दिया गया था । विद्वान् काउंसेल ने आगे दलील देते हुए इस बात पर बल दिया है कि निचले न्यायालय द्वारा बाद के प्रक्रम पर विवाद्यक विरचित किए गए थे और इसलिए अपीलार्थी वृद्धियों के लिए तैयार नहीं हो पाया था और चूंकि विवाद्यक परिवर्तित किए गए थे इसलिए अपीलार्थी के साथ अन्याय हुआ था । काउंसेल ने यह दलील दी है कि आरंभत: अपीलार्थी ने यह पक्षकथन किया था कि प्रत्यर्थी उसकी पत्नी थी और गर्भवती थी और बाद में उसके माता-पिता द्वारा उसका गर्भपात कराने के लिए दबाव दिया गया था । अत: साधारणतया सबूत का भार उसके ऊपर न होकर उसकी पत्नी के ऊपर था । उन्होंने बाद में पुन: यह भी दलील दी है कि सबूत का भार अपीलार्थी के ऊपर जाता है और उसने यह साबित कर दिया है कि प्रत्यर्थी उसकी विधिक रूप से

विवाहिता पत्नी है । विद्‌वान् काउंसेल ने अपने पक्षकथन के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया है –

(1) **नीतू सिंह** बनाम **राज्य और अन्य**[1] ;

(2) **मनीष सिंह** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र दिल्ली सरकार और अन्य**[2] ;

(3) **टी. शिव कुमार** बनाम **पुलिस निरीक्षक**[3] ;

(4) **न्यायालय स्वप्रेरणा से (लज्जा देवी** बनाम **राज्य)**[4] ।

प्रत्यर्थी द्‌वारा दी गई दलीलें

12. प्रत्यर्थी के विद्‌वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी उस तारीख को अप्राप्तवय थी जिसको अभिकथित घटनाएं हुई हैं और जिस तारीख को उसको तथ्यत: व्यपहृत करना, भययुक्त करना और उसको यह धमकी देना कि उसके माता-पिता की हत्या कर दी जाएगी यदि उसने और उसके कुटुंब के सदस्यों ने अपीलार्थी की मांगें पूरी नहीं की, अभिकथित किया गया है । जब पुत्री स्कूल से वापस नहीं लौटी थी तब यह इत्तिला प्राप्त होने पर कि अपीलार्थी द्‌वारा उसकी पुत्री को बलपूर्वक ले जाया गया है, 2007 का पुलिस थाना कोतवाली मामला सं. 597 (2007 की जी. आर. सं. 3178 के तत्स्थानी 2009 का सेशन विचारण सं. 275) से संबंधित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी । प्रत्यर्थी ने केवल अत्यधिक दबाव के अधीन और इस धमकी के अधीन कि इसके माता-पिता की हत्या कर दी जाएगी, माता-पिता को नुकसान के भय के अधीन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अपना कथन दर्ज कराया था । अत: वह यह मिथ्या कथन करने के लिए सहमत हुई कि उसका विधि पूर्ण रूप से विवाह हुआ था और उसके पिता द्‌वारा किए गए कथन मिथ्या हैं । अपीलार्थी द्‌वारा विद्‌वान् निचले न्यायालय के समक्ष पेश किए गए फोटो-चित्र प्रत्यर्थी को मार-पीट करके

---

[1] (1999) 1 डी. एम. सी. 634.

[2] ए. आई. आर. 2006 दिल्ली 37.

[3] ए. आई. आर. 2012 मद्रास 62 (पूर्ण न्यायपीठ).

[4] 2013 क्रिमिनल ला जर्नल 3458 (दिल्ली) (पूर्ण न्यायपीठ).

और उसे भययुक्त करके तथा बार-बार धमकियां देकर लिए गए थे और इसलिए उसने उक्त फोटो-चित्र खिंचवाए थे । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि पक्षकारों के बीच विवाह या पुनर्विवाह का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि स्पष्टत: पक्षकारों के बीच कोई विवाह ही नहीं हुआ था । विवाह के संबंध में ये दलीलें देना कि विवाह हुआ है और चूंकि उसने विवाह-विच्छेद के लिए कोई मामला फाइल नहीं किया है, केवल दांडिक मामले को सिविल मामले में परिवर्तित करने का प्रयास मात्र है । आरंभ से ही अपीलार्थी के विरुद्ध संस्थित दांडिक मामले में यह प्रकथन किया गया है कि विवाद्यक व्यपहरण से संबंधित है और विरोधी पक्षकार के साथ बलात्संग किया गया है । इन परिस्थितियों के अधीन यह नहीं कहा जा सकता कि कभी भी कोई विवाह हुआ है । किसी मंदिर में हुआ तथाकथित विवाह जिसके लिए सहयोग राशि या 51 रुपए की रसीद अभिलेख पर पेश की गई है, मंदिर में धन का संदाय करके बनवाई गई है न कि किसी विवाह को कराने के लिए उक्त धनराशि संदत्त की गई है । विद्वान् काउंसेल ने दस्तावेजी साक्ष्य के निर्देश में जिसका कि अपीलार्थी द्वारा अवलंब लिया गया है और जो प्रदर्श-1 से प्रदर्श-1ए/ई, प्रदर्श-2, प्रदर्श-3 और प्रदर्श-4 हैं, यह दलील दी है कि फोटो-चित्रों से संबंधित श्रृंखला प्रदर्श-1 इस धमकी के अधीन लिए गए फोटो-चित्र हैं कि उसके माता-पिता को नुकसान पहुंचाया जाएगा और उनकी हत्या कर दी जाएगी और इसलिए ये साक्ष्य के लिए गढ़े गए हैं । विद्वान् काउंसेल ने प्रदर्श-2 के संबंध में जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन किया गया कथन है, यह दलील दी है कि उसने ऐसा कथन अपने और अपने कुटुंब के सदस्यों को जान से मारने की धमकी के दबाव और भय के अधीन किया है । इसके अतिरिक्त उसने यह कहते हुए भी अभिसाक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी के कुछ साथी लड़के कक्ष के ठीक बाहर खड़े हुए थे जब वह अपना साक्ष्य दे रही थी और इसलिए उसके लिए यह कठिन था कि वह अपने कथन को परिवर्तित करे या न्यायालय के समक्ष सही बात कहे । विद्वान् काउंसेल ने प्रदर्श-3 के संबंध में जो दवे मंदिर द्वारा जारी किया गया विवाह प्रमाणपत्र होना बताया गया है, यह दलील दी है कि यह सहयोग राशि के रूप में 51 रुपए संदाय करने के पश्चात् प्राप्त किया गया था और इसके

अतिरिक्त विवाह का कोई अन्य सबूत नहीं है यथा सात फेरे (सप्तपदी) इत्यादि के फोटो-चित्र । प्रदर्श-4 के संबंध में जो तारीख 15 नवंबर, 2007 के दैनिक जागरण समाचारपत्र की प्रति है, यह कहा गया है कि यह केवल समाचारपत्र की कतरन है जो अन्यथा भी ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है और इसलिए इसकी कोई सुसंगतता नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अपीलार्थी की ओर से अथवा उसके कुटुंब के सदस्यों की ओर से कोई भी मौखिक साक्ष्य पेश नहीं किया गया है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि निचले न्यायालय के अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी को साक्ष्य पेश करने के लिए पर्याप्त अवसर दिया गया था । अपीलार्थी अपने काउंसेल के साथ अनेक तारीखों पर न्यायालय में पेश हुआ था और उसने प्रत्यर्थी के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा नहीं की जो कि उसका अपना व्यतिक्रम है ।

13. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी की ओर से अनेक प्रदर्श अर्थात् 14 प्रदर्श और 3 साक्षी पेश किए गए हैं । इनमें विद्यालय द्वारा जारी किया गया प्रमाणपत्र और झारखंड सरकार के योजना और विकास द्वारा जारी किया गया प्रमाणपत्र है जिनसे यह उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी अप्राप्तवय है और उसने विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष यह अनुरोध करते हुए आवेदन पेश किया था कि वह अपने माता-पिता के साथ जाना चाहती है । अन्य दस्तावेजों में सेशन विचारण सं. 275 में विरोधी पक्षकार के अभिसाक्ष्य की प्रमाणित प्रति और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन पेश किए गए आवेदन की प्रति है जिसमें भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन आरोप जोड़ने के लिए अनुरोध किया गया है ।

14. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अपीलार्थी ने यह अभिकथित किया है कि चूंकि एक विधिमान्य विवाह हुआ है इसलिए प्रत्यर्थी के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह अभिकथित विवाह को अकृत करने की डिक्री के लिए अनुरोध करते हुए प्रति-दावा फाइल करे और अभिकथित विवाह से संबंधित उपलब्ध किसी दस्तावेज को अकृत और शून्य घोषित करने के लिए अनुरोध करे । इसके अतिरिक्त अन्ततः विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि

विद्‌वान्‌ निचले न्यायालय ने विवाद्‌यक को पुन: विरचित करने के लिए पूर्ण रूप से अपने अधिकारों के भीतर कार्य किया है क्योंकि न्यायालय ने विशेष रूप से विवाद्‌यक सं. 2 और 3 विरचित किए हैं, जो इस प्रकार हैं :–

(1) क्या यथा प्ररूपित वाद ग्रहण किए जाने योग्य है ?

(2) क्या पक्षकारों के बीच संपन्न विवाह विधिमान्य है और क्या प्रत्यर्थी (हमारे समक्ष की विरोधी पक्षकार) आवेदक (हमारे समक्ष का अपीलार्थी) की विधिक रूप से विवाहिता पत्नी है या नहीं ?

(3) क्या आवेदक (हमारे समक्ष का अपीलार्थी) दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किसी डिक्री के लिए हकदार है अथवा क्या प्रत्यर्थी (हमारे समक्ष की विरोधी पक्षकार) विवाह को अकृत घोषित कराने की घोषणा के लिए हकदार है ?

(4) क्या आवेदक (हमारे समक्ष का अपीलार्थी) दावा किए गए रूप में किसी अनुतोष/अनुतोषों के लिए हकदार है ?

15. तथापि, प्रत्यर्थी के विद्‌वान्‌ काउंसेल ने विवाद्‌यक के पुन: विरचन के बारे में यह दलील दी है कि क्योंकि ऐसा निर्णय के समय किया गया है इसलिए यह किसी भी पक्षकार के लिए हानिकारक नहीं है क्योंकि दोनों पक्षकार समान स्तर पर थे क्योंकि कोई भी पक्षकार यह नहीं जानता था कि यह विवाद्‌यक विरचित किया जाएगा । इसके अतिरिक्त मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यथा विरचित विवाद्‌यक असंगत नहीं हैं । विद्‌वान्‌ काउंसेल ने इस संबंध में **कंवल राम और अन्य** बनाम **हिमाचल प्रदेश प्रशासन**[1] वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि किसी विवाह के लिए आवश्यक रीतियां पूरी किए जाने की आवश्यकता है और वर्तमान मामले में ऐसे किसी साक्ष्य का अभाव है ।

निष्कर्ष

16. दोनों काउंसेलों को सुनने और अभिलेख तथा उद्धृत निर्णयों का

---

[1] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 614.

परिशीलन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि अपीलार्थी ने एक विधिमान्य विवाह का मामला साबित कर दिया है और इसलिए यह न तो शून्य है और न ही पूर्ण रूप से शून्यकरणीय है और न ही इस प्रकार का है जिसे अकृत घोषित किया जा सकता है अपितु यह केवल कतिपय विधिक अपेक्षाओं के अधीन है । इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी की ओर से यह बताने का प्रयास किया गया है कि वह एक कम आयु की लड़की है जिसे विवाह के लिए बलपूर्वक व्यपहृत किया गया था और जिसके लिए बाद में बलात्संग का आरोप जोड़ा गया था और यह बताने का प्रयास किया गया था कि किसी प्रकार से प्रथम दृष्टि में यह एक विधिमान्य विवाह नहीं था ।

17. इस न्यायालय के समक्ष पेश किए गए मामले में अन्य पहलुओं के साथ अन्य तीन तथ्यात्मक पहलू मौजूद हैं जो परिणाम को प्रभावित करते हैं और ये इस प्रकार हैं – प्रथमत: अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि घटना के समय लड़की कम आयु की थी अथवा अप्राप्तवय थी और द्वितीयत: साक्ष्य में ऐसा कुछ नहीं आया है जो यह साबित करने वाला हो कि हिन्दू विवाह अनुष्ठानों के अधीन यथा अपेक्षित रीतियों या प्रक्रियाओं द्वारा कोई विवाह सम्पन्न हुआ था । अत: **कंवल राम** (पूर्वोक्त) वाले मामले के आधार पर यह कहना संभव नहीं है कि प्रथम दृष्टि में कोई विधिमान्य विवाह हुआ था और इसलिए यह स्वत: शून्य है । उक्त मामले में दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन को मंजूर करने का प्रश्न किसी भी प्रकार से उद्भूत नहीं हुआ था । इसलिए प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रांची द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2014 को पारित निर्णय और डिक्री भी विधिमान्य रहेगी । तीसरा पहलू सहमति का विवाद्यक है, यद्यपि अपीलार्थी ने यह कहा है कि लड़की एक सहमत पक्षकार थी इसलिए प्रत्यर्थी लड़की ने अभिलेख पर यह नहीं कहा है कि उसे बलपूर्वक ले जाया गया था और उसने एक दांडिक मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन आरोप जोड़ने की ईप्सा की थी । अत: यह बात कि क्या प्रत्यर्थी-बालिका अपीलार्थी के साथ जाना चाहती थी या नहीं, वर्तमान मामले पर कोई प्रभाव नहीं डालती ।

18. जहां तक अपीलार्थी द्वारा **नीतू सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले का

अवलंब लिए जाने का संबंध है, यह एक ऐसा मामला है जिसमें लड़की अप्राप्तवय होते हुए भी अभियुक्त के साथ जाना चाहती थी तथापि, वर्तमान मामले में अपीलार्थी ने एक ऐसा मामला बनाने का प्रयास किया है कि लड़की ने आरंभत: घटना में स्वेच्छापूर्वक भाग लिया था तथापि, प्रत्यर्थी-बालिका ने विचारण न्यायालय में कार्यवाहियों के दौरान इस बात से इनकार कर दिया ।

19. **मनीष सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में भी संबंधित लड़की सुमन अप्राप्तवय थी और घटना के संबंध में उसने यह कथन किया था कि वह अपीलार्थी मनीष सिंह के साथ अपनी इच्छा से गई थी और उसने विवाह के तथ्य की और अपीलार्थी के साथ रहने की पुष्टि भी की थी । तथापि, बाद में लड़की अपीलार्थी के साथ रहने लगी थी और उसने यह कहा था कि वह अपने माता-पिता के साथ नहीं रहना चाहती है ।

20. **टी. शिव कुमार** बनाम **पुलिस निरीक्षक** (पूर्वोक्त) वाले मामले में जो कि एक बंदी-प्रत्यक्षीकरण का मामला था, अप्राप्तवय निरुद्ध ने खंड न्यायपीठ के समक्ष उपस्थित होकर यह निवेदन किया था कि उसे कुछ समय पूर्व से प्रत्यर्थी सं. 2 के साथ प्रेम हो गया था और उसके माता-पिता ने यह बात जानने के पश्चात् उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके मामा के साथ उसका विवाह करने के लिए प्रबंध करना आरंभ कर दिया था । इसलिए उसके अनुसार तारीख 8 जून, 2011 को वह अपनी इच्छा से अपने माता-पिता का मकान छोड़कर चली गई और उसने तारीख 12 जुलाई, 2012 को प्रत्यर्थी सं. 2 के साथ विवाह कर लिया था । प्रत्यर्थी सं. 2 और उसके कुटुंब के सदस्यों द्वारा उक्त विवाह को स्वीकार किया गया था और उसे किसी ने अवैध रूप से निरुद्ध नहीं किया था ।

21. **न्यायालय स्वप्रेरणा से (लज्जा देवी** बनाम **राज्य**) (पूर्वोक्त) वाले मामले में चार उदाहरणों पर विचार किया गया था तथापि, सभी चार मामलों में सामान्य धमकी का कथन था कि इन सभी मामलों में लड़कियों ने यह कथन किया था कि उनका व्यपहरण नहीं किया गया था अपितु वे अपने-अपने लड़कों के साथ प्रेम करती थीं और उन्होंने उनसे विवाह किया था । सभी चारों लड़कियों ने यह कथन किया था कि उनका विवाह उनकी सम्मति और खुशी से सम्पन्न हुआ था । तथापि, विवाह

के समय उन सभी चारों लड़कियों की आयु 18 वर्ष से कम थी जबकि उन लड़कों की आयु के बारे में कोई विवाद नहीं था कि विवाह के समय उनकी आयु 21 वर्ष से अधिक थी ।

22. अपीलार्थी द्वारा अवलंब लिए गए चारों निर्णयों का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी का मामला इस सीमा तक उन मामलों के समान नहीं है जो उसके द्वारा उद्धृत किए गए हैं, क्योंकि उक्त मामलों में सभी लड़कियां अप्राप्तवय थीं तथापि, उन सभी ने यह कहा था कि घटना के समय उन्होंने अपनी इच्छा और खुशी से घटना में भाग लिया था । वर्तमान मामले में लड़की ने विचारण न्यायालय में की कार्यवाहियों में यह कहा है कि उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध ले जाया गया था और उसने उसके बाद कभी भी अपीलार्थी के साथ रहने की इच्छा व्यक्त नहीं की थी । हमारे समक्ष के अपीलार्थी का मामला उद्धृत निर्णयों में सम्मति के बिन्दु से पृथक् है भले ही घटना के आरंभिक समय के बारे में हो या उसके पश्चात् ।

23. उद्धृत निर्णयों के संदर्भ में हमारे समक्ष के मामले में संगत विवाद्यक के निपटान के लिए हमारे समक्ष 2 निर्णयों का अवलंब लिया गया है । ये निर्णय **न्यायालय स्वप्रेरणा से (लज्जा देवी** बनाम **राज्य**) (पूर्वोक्त) और **टी. शिव कुमार** (पूर्वोक्त) वाले मामले हैं । पश्चातवर्ती मामले में पूर्ण न्यायपीठ द्वारा निर्णय दिया गया है ।

24. **न्यायालय स्वप्रेरणा से (लज्जा देवी** बनाम **राज्य)** (पूर्वोक्त) वाले मामले में एक विवाद्यक जो विरचित किया गया था और जो वर्तमान मामले के लिए सुसंगत भी है, यह था कि हिन्दू विवाह के अधीन उस विवाह की स्थिति क्या होगी जहां विवाह के एक पक्षकार की आयु हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 5(iii) और बालक विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006 की धारा 2(क) के अधीन यथा विहित 18 वर्ष से कम हो ? **टी. शिव कुमार** (पूर्वोक्त) वाले मामले में भी विरचित एक प्रश्न यह था कि क्या किसी व्यक्ति द्वारा 18 वर्ष से कम आयु की महिला के साथ सम्पन्न कोई विवाह एक विधिमान्य विवाह कहा जा सकता है और क्या ऐसी लड़की की अभिरक्षा उसके पति को दी जा सकती है, (यदि वह अभिरक्षा में नहीं है) ?

25. **न्यायालय स्वप्रेरणा से (लज्जा देवी** बनाम **राज्य)** (पूर्वोक्त) वाले मामले में माननीय न्यायालय ने इस बात पर विचार करते हुए प्रश्न का उत्तर दिया था कि 18 वर्ष से कम आयु की महिला अथवा 21 वर्ष से कम आयु के पुरुष के साथ सम्पन्न विवाह शून्य विवाह न होकर शून्यकरणीय विवाह होगा जो तब विधिमान्य बन जाएगा जब बालक विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006 की धारा 2(क) के अर्थान्तर्गत उक्त अधिनियम की धारा 3 के अधीन ऐसे बालक द्वारा अपने विवाह को शून्य घोषित कराने के लिए कोई कार्रवाई न की गई हो । माननीय न्यायालय ने **टी. शिव कुमार** (पूर्वोक्त) वाले मामले में इस प्रकार प्रश्न का उत्तर दिया था :-

> "किसी व्यक्ति द्वारा 18 वर्ष से कम आयु की महिला के साथ किया गया विवाह शून्यकरणीय है और यह तब तक विद्यमान रहेगा जब तक कि किसी सक्षम न्यायालय द्वारा बालक विवाह प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 के अधीन अकृत घोषित न कर दिया जाए । ऐसा विवाह वर्गीकरण के अनुसार आवश्यक रूप से एक विधिमान्य विवाह नहीं है तथापि, यह अविधिमान्य भी नहीं है । विवाह करने वाला पुरुष पक्षकार उन सभी अधिकारों का उपभोग नहीं कर सकता जो अन्यथा एक विधिमान्य विवाह से उत्पन्न होते हैं और इसकी बजाय वह केवल परिसीमित अधिकारों का ही उपभोग कर सकता है ।"

26. माननीय न्यायालय द्वारा दिए गए उपर्युक्त उत्तरों पर विचार करने पर प्रथमदृष्ट्या यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी का यह दावा कि उसने एक विधिमान्य विवाह किया है, सही है और इसलिए दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए उसका दावा पूर्णतया न्यायोचित है । यह हो सकता है कि सम्मति का मुद्दा न हो तथापि, अपीलार्थी द्वारा अवलंब लिए गए सभी चारों निर्णयों में ऐसी अप्राप्तवय लड़कियों के मामले पर विचार किया गया था जिन्होंने अपनी सम्मति दी थी अथवा वे अभियुक्त-व्यक्तियों के साथ स्वेच्छा से गई थीं । वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी दिव्या चौधरी ने अभिलेख पर यह साक्ष्य दिया है कि उसे

बलपूर्वक ले जाया गया था और उसकी सम्मति से विवाह नहीं हुआ था जिसके बारे में अपीलार्थी द्‌वारा दावा किया गया है । अपीलार्थी ने यह भी दलील दी है कि प्रत्यर्थी के आचरण से उसकी सम्मति साबित होती है तथापि, क्या न्यायालय उसके विरोध को देखते हुए अब यह उपधारित कर सकता है कि एक विधिमान्य विवाह हुआ था और क्या अपीलार्थी के दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन करा सकता है । इस बारे में उत्तर नकारात्मक है । एक अन्य पहलू भी है जो अधिक महत्वपूर्ण है और वह यह है कि क्या वस्तुत: विवाह हुआ था ? सहयोग राशि के सिवाय ऐसा कोई भी साक्ष्य नहीं है कि हिन्दू धर्म द्‌वारा अपनाई गई धार्मिक रीतियों और अनुष्ठानों के अनुसार विवाह हुआ था । अत: **कंवल राम** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के अनुसार यह नहीं कहा जा सकता कि विवाह रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों के साथ सम्पन्न हुआ था । अत: प्रश्न यह है कि क्या किसी विवाह के अभाव में अपीलार्थी के हक में दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन किया जा सकता है, निश्चित रूप से नहीं ।

27. वर्तमान मामले के तथ्यों और अपीलार्थी द्‌वारा उद्धृत किए गए निर्णयों को दृष्टिगत करते हुए पुन: विरचित विवाद्‌यक अथवा पूर्व में विरचित विवाद्‌यक का उत्तर दिया जा सकता है । यहां हम विवाद्‌यक सं. 2 और 3 का पुन: उल्लेख करते हैं :-

> 2. क्या पक्षकारों के बीच सम्पन्न विवाह विधिमान्य है और क्या प्रत्यर्थी (हमारे समक्ष विरोधी पक्षकार) आवेदक (हमारे समक्ष के अपीलार्थी) की विधिक रूप से विवाहिता पत्नी है या नहीं ?
>
> 3. क्या आवेदक (हमारे समक्ष का अपीलार्थी) दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किसी डिक्री के लिए हकदार है अथवा क्या प्रत्यर्थी (हमारे समक्ष विरोधी पक्षकार) विवाह को अकृत घोषित कराने के लिए हकदार है ?

28. हमारे द्‌वारा ऊपर उल्लिखित तर्कों के आधार पर यह पहले ही उपदर्शित किया जा चुका है कि प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन है कि उसका

बलपूर्वक व्यपहरण किया गया था और इसलिए घटना में कोई सहमति नहीं दी गई थी । बाद में उसने अपीलार्थी के साथ जाने से इनकार कर दिया । चूंकि हमारे समक्ष का मामला स्वत: सहमति के बिन्दु पर उद्धृत चारों निर्णयों से भिन्न है इसलिए ये निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस मामले को लागू नहीं होते हैं । अन्य परिस्थिति जिसका ऊपर उद्धृत चारों मामलों में उल्लेख नहीं है, विवाह रीतियों और अनुष्ठानों के संबंध में कोई साक्ष्य न होने के संबंध में है । अपीलार्थी ने रीतियों और अनुष्ठानों के लिए कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है, अत: निष्कर्ष यह है कि कोई विवाह नहीं हुआ था । तद्नुसार ऊपर उल्लिखित दोनों विवाद्यकों का जो कुटुंब न्यायालय द्वारा विरचित किए गए हैं, कुटुंब न्यायालय द्वारा सही उत्तर दिया गया है और इसमें कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है ।

29. हमारे द्वारा दिए गए उपर्युक्त कारणों के आधार पर भी प्रधान न्यायाधीश कुटुंब न्यायालय, रांची द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2014 को पारित निर्णय और डिक्री की जिसके द्वारा विवाह को अकृत घोषित करते हुए और प्रति-दावा में अनुरोध के अनुसार विवाह शून्य घोषित करते हुए दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए वाद खारिज किया गया है, पुष्टि की जाती है । तद्नुसार अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

नायब सिंह और अन्य

बनाम

गगन गोपाल और एक अन्य

तारीख 11 दिसंबर, 2018

न्यायमूर्ति अनिल क्षेत्रपाल

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 20 – भूमि विक्रीत करने के लिए विक्रय-करार – अग्रिम धन के रूप में 20 लाख रुपए का संदाय – वादियों द्वारा नियत तारीख़ को विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय में उपस्थिति – प्रतिवादियों द्वारा संपत्ति अन्य व्यक्ति को विक्रीत की जानी – वादियों द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – निचले न्यायालयों द्वारा ब्याज सहित अग्रिम धन की वापसी के लिए वाद डिक्री किया जाना – चूंकि प्रतिवादी संविदा के अपने भाग का पालन करने में विफल रहे हैं – अत: न्यायालयों द्वारा अग्रिम धन के प्रतिदाय का आदेश न्यायोचित है – प्रतिवादियों की अपील खारिज होने योग्य है ।

पक्षकारों के बीच तारीख 3 जून, 2005 को एक विक्रय-करार हुआ था जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि अग्रिम धन के रूप में 20 लाख रुपए की धनराशि संदत्त की गई है । उक्त विक्रय-करार 12 बीघा और 16 बिस्वा माप की भूमि के संबंध में था । इसके पश्चात् विक्रय विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के लिए मूल रूप से तारीख 1 दिसंबर, 2005 नियत की गई थी और बाद में इसे तारीख 21 दिसंबर, 2005 तक बढ़ाया गया था और जब वादी उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय पहुंचे और चूंकि प्रतिवादी विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए वहां नहीं पहुंचे तब वादियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई । इसके पश्चात् प्रतिवादियों ने विवादित संपत्ति तारीख 1 दिसंबर, 2006 के विक्रय

विलेख द्‌वारा विक्रीत कर दी । नियमित द्‌वितीय अपील में के प्रतिवादी-अपीलार्थियों ने दोनों निचले न्यायालयों द्‌वारा निकाले गए उन एक जैसे निष्कर्षों के विरुद्ध अपील फाइल की है जिनके द्‌वारा विक्रय-करार की तारीख से वाद फाइल करने की तारीख तक 9 प्रतिशत की दर से ब्याज और वाद के लंबित रहने तथा ब्याज की वसूली तक 6 प्रतिशत की दर से भावी ब्याज सहित अग्रिम धन के प्रतिदाय के लिए वाद डिक्री किया गया था । अपीलार्थी-प्रतिवादियों ने उक्त डिक्री और आदेश से व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों के बीच तारीख 3 जून, 2005 को एक विक्रय-करार हुआ था जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि अग्रिम धन के रूप में 20 लाख रुपए की धनराशि संदत्त की गई है । उक्त विक्रय-करार 12 बीघा और 16 बिस्वा माप की भूमि के संबंध में था । इसके पश्चात् विक्रय विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के लिए मूल रूप से तारीख 1 दिसंबर, 2005 नियत की गई थी और बाद में इसे तारीख 21 दिसंबर, 2005 तक बढ़ाया गया था और जब वादी उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय पहुंचे और चूंकि प्रतिवादी विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए वहां नहीं पहुंचे तब वादियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई । इसके पश्चात् प्रतिवादियों ने विवादित संपत्ति तारीख 1 दिसंबर, 2006 के विक्रय विलेख द्‌वारा विक्रीत कर दी । इस न्यायालय ने निचले न्यायालयों द्‌वारा निकाले गए तथ्य के निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए दलीलों पर विचार किया और यह पाया कि दोनों निचले न्यायालयों ने यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि वादीगण संविदा के अपने भाग के पालन के लिए तैयार और रजामंद थे क्योंकि वे बढ़ाई गई तारीख अर्थात् 21 दिसंबर, 2005 को उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय में पहुंचे थे और उन्होंने एक शपथ-पत्र का सत्यापन किया था जिसमें उन्होंने विनिर्दिष्ट रूप से शपथ पर यह कहा था कि वे संविदा के अपने भाग के पालन के लिए और शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करने के लिए तैयार और रजामंद हैं । अतः अपीलार्थियों के विद्‌वान् काउंसेल द्‌वारा दी गई दलील

में कोई बल नहीं है । इस न्यायालय को तथ्य के उपर्युक्त निष्कर्षों और अभिलेख पर के साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए तथ्य के एक जैसे निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए कोई बेहतर आधार प्रतीत नहीं होता है और इसलिए नियमित द्वितीय अपील खारिज की जाती है । (पैरा 5, 9 और 10)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की नियमित द्वितीय अपील सं. 236.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री सुवीर सिधू

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री सिद्धार्थ गुप्ता

न्यायमूर्ति अनिल क्षेत्रपाल – अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने तारीख 20 जनवरी, 2014 को निम्नलिखित दलीलें दीं जिसके आधार पर न्यायाधीश ने मामले में सूचना जारी की । उक्त आदेश इस प्रकार है :–

> "अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थियों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 41, नियम 27 के अधीन अपील के साथ एक आवेदन फाइल किया गया था तथापि, आवेदन पर कोई आदेश पारित किए बिना अपील खारिज कर दी गई है । उन्होंने यह भी दलील दी कि आवेदन को स्वीकार करने या खारिज करने से संबंधित कोई पृथक् आदेश पारित नहीं किया गया है ।
>
> मामले में तारीख 22 मार्च, 2014 के लिए सूचना जारी की जाती है ।"

2. यह अविवादित है कि उपर्युक्त दलील तथ्यात्मक रूप से सही नहीं है क्योंकि प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 13 नवंबर, 2003 को अतिरिक्त साक्ष्य के लिए आवेदन का विनिश्चय कर दिया था ।

3. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की सहमति से मुख्य अपील में विस्तार से दलीलें सुनी गई हैं ।

4. नियमित द्वितीय अपील में के प्रतिवादी-अपीलार्थियों ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए उन एक जैसे निष्कर्षों के विरुद्ध अपील फाइल की है जिनके द्वारा विक्रय-करार की तारीख से वाद फाइल करने की तारीख तक 9 प्रतिशत की दर से ब्याज और वाद के लंबित रहने तथा ब्याज की वसूली तक 6 प्रतिशत की दर से भावी ब्याज सहित अग्रिम धन के प्रतिदाय के लिए वाद डिक्री किया गया था ।

5. पक्षकारों के बीच तारीख 3 जून, 2005 को एक विक्रय-करार हुआ था जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि अग्रिम धन के रूप में 20 लाख रुपए की धनराशि संदत्त की गई है । उक्त विक्रय-करार 12 बीघा और 16 बिस्वा माप की भूमि के संबंध में था । इसके पश्चात् विक्रय विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के लिए मूल रूप से तारीख 1 दिसंबर, 2005 नियत की गई थी और बाद में इसे तारीख 21 दिसंबर, 2005 तक बढ़ाया गया था और जब वादी उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय पहुंचे और चूंकि प्रतिवादी विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए वहां नहीं पहुंचे तब वादियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई । इसके पश्चात् प्रतिवादियों ने विवादित संपत्ति तारीख 1 दिसंबर, 2006 के विक्रय विलेख द्वारा विक्रीत कर दी ।

6. दोनों निचले न्यायालयों ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अग्रिम धन के प्रतिदाय के संबंध में वाद डिक्री किया, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है ।

7. इस न्यायालय ने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को विस्तार से सुना और उनकी सहायता से दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों पर गहराई से विचार किया गया ।

8. अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वादी संविदा के अपने भाग के पालन के लिए तैयार

और रजामंद हैं और इसलिए अग्रिम धन के प्रतिदाय के लिए आदेश नहीं किया जा सकता ।

9. इस न्यायालय ने निचले न्यायालयों द्‌वारा निकाले गए तथ्य के निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए दलीलों पर विचार किया और यह पाया कि दोनों निचले न्यायालयों ने यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि वादीगण संविदा के अपने भाग के पालन के लिए तैयार और रजामंद थे क्योंकि वे बढ़ाई गई तारीख अर्थात् 21 दिसंबर, 2005 को उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय में पहुंचे थे और उन्होंने एक शपथ-पत्र का सत्यापन किया था जिसमें उन्होंने विनिर्दिष्ट रूप से शपथ पर यह कहा था कि वे संविदा के अपने भाग के पालन के लिए और शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करने के लिए तैयार और रजामंद हैं । अत: अपीलार्थियों के विद्‌वान् काउंसेल द्‌वारा दी गई दलील में कोई बल नहीं है ।

10. इस न्यायालय को तथ्य के उपर्युक्त निष्कर्षों और अभिलेख पर के साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए दोनों निचले न्यायालयों द्‌वारा निकाले गए तथ्य के एक जैसे निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए कोई बेहतर आधार प्रतीत नहीं होता है और इसलिए नियमित द्‌वितीय अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

वी. राजेन्द्रन (मृतक)

बनाम

के. चिन्ना पिल्लई और एक अन्य

तारीख 11 सितंबर, 2018

न्यायमूर्ति सी. वी. कार्तिकेयन

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 38 – वादी द्वारा पट्टे पर ली गई संपत्ति को भोग-बंधक के साथ प्रतिवादी के हक़ में बंधक किया जाना – बाद में वादी द्वारा संपत्ति का मोचन कराकर संपत्ति का क़ब्जा वापस लिया जाना – प्रतिवादी द्वारा पट्टा रद्द होने का कथन किया जाना – वादी द्वारा बंधकदार और उसके प्रतिनिधियों को संपत्ति पर हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए व्यादेश जारी करने के लिए वाद – अपील न्यायालय द्वारा क़ब्जे के संबंध में राजस्व प्राधिकारियों के आदेशों का अवलंब लिया जाना – किसी न्यायालय के निष्कर्ष उसके समक्ष पेश किए गए साक्ष्य और दस्तावेज़ों पर आधारित होना चाहिए – राजस्व दस्तावेज किसी तथ्य को साबित करने के लिए सुसंगत हो सकते हैं – तथापि, वे निर्णय पारित करने के लिए आधार नहीं बन सकते ।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 – धारा 37 और 38 – वादी द्वारा व्यादेश के लिए वाद – वादी द्वारा संपत्ति पर अपना क़ब्जा साबित किया जाना – प्रथम अपील न्यायालय द्वारा इनकार करने के लिए राजस्व प्राधिकारियों के आदेशों का अवलंब लिया जाना – जहां वादी द्वारा संपत्ति पर अपना विधिक क़ब्जा साबित कर दिया गया हो वहां राजस्व प्राधिकारियों के आदेशों का अवलंब लेकर व्यादेश जारी करने से इनकार करना न्यायोचित नहीं है ।

वादी द्वारा 1999 का मूल वाद सं. 173 प्रतिवादी चिन्ना पिल्लई और विश्वनाथन के विरुद्ध फाइल किया गया था जिसमें वादी ने प्रतिवादियों को वाद संपत्ति के उपभोग और शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप

करने से रोकने के लिए निर्णय और डिक्री पारित करने का अनुरोध किया था तथा साथ ही साथ वाद के खर्चों के लिए भी अनुरोध किया गया था । विद्वान् प्रधान जिला मुंसिफ न्यायालय, कुंबकोणम ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि वादी काबिज था और प्रथम प्रतिवादी यह साबित करने में विफल रहा है कि वह संपत्ति पर काबिज था और परिणामस्वरूप वाद खर्चों के बिना डिक्री कर दिया । इस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रतिवादियों ने 2001 की ए. एस. सं. 122 फाइल की जिसे प्रधान अधीनस्थ न्यायाधीश, कुंबकोणम के समक्ष विचारार्थ रखा गया । अपील के लंबन के दौरान वादी की मृत्यु हो गई । उसके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर पक्षकार बनाया गया । एक विधिक प्रतिनिधि की भी मृत्यु हो गई और उसके विधिक प्रतिनिधियों को भी अभिलेख पर पक्षकार बनाया गया । विद्वान् प्रधान अधीनस्थ न्यायाधीश ने अभिलेख पर के साक्ष्य की पुन: परीक्षा की । उसने विचारार्थ विवाद्यक भी विरचित किए । उसने यह पाया कि वादी के हक में मंजूर किया गया पट्टा वस्तुत: राजस्व खंड अधिकारी द्वारा प्रदर्श बी-1 द्वारा रद्द कर दिया गया था । परिणामत: यह अभिनिर्धारित किया गया कि वादी काबिज नहीं था तथापि, प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 3 नवंबर, 2009 के निर्णय द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को उलट दिया और अपील मंजूर करते हुए वाद खारिज कर दिया । प्रत्यर्थियों ने प्रथम अपील में की गई उक्त खारिजी को आक्षेपित करते हुए वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की है । प्रधान जिला मुंसिफ न्यायालय, कुंबकोणम की फाइल पर के 1999 के मूल वाद सं. 173 में के वादी ने हमारे समक्ष यह अपील फाइल की है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इसके प्रतिकूल प्रथम प्रतिवादी ने यह दावा किया है कि वह वाद संपत्ति पर काबिज था । उसने वादी के नाम में पट्टा प्रदर्श ए-1 को रद्द करने वाला राजस्व खंड अधिकारी का आदेश प्रदर्श बी-1 फाइल किया है । यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि 1999 के मूल वाद सं. 173 में निर्णय तारीख 4 सितंबर, 2001 को पारित किया गया था । 2001 के ए. एस. सं. 121 में निर्णय तारीख 3 नवंबर, 2009 को

पारित किया गया था । अब तारीख 21 नवंबर, 2002 के दस्तावेज को पेश करने की ईप्सा की गई है । यह आदेश मूल वाद में पारित निर्णय के पश्चात् जिला राजस्व अधिकारी द्वारा पारित किया गया था । तथापि, उक्त दस्तावेज प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया था । पट्टा मंजूर करने वाले, पट्टा रद्द करने वाले और तत्पश्चात् पट्टा रद्द करने वाले आदेश राजस्व प्राधिकारियों द्वारा पारित किए गए हैं । तथापि, वादी ने कब्जे को साबित करने के लिए अपना स्वयं का कथन किया है । प्रथम अपील न्यायालय ने राजस्व दस्तावेजों के आधार पर अपने निष्कर्ष दिए हैं । किसी न्यायालय का निष्कर्ष उसके समक्ष पेश किए गए दस्तावेजों पर आधारित होना चाहिए । राजस्व दस्तावेज किसी तथ्य को साबित करने के लिए सुसंगत हो सकते हैं तथापि, वे निर्णय के लिए आधार नहीं बन सकते । वादी को स्वतंत्र रूप से कब्जा साबित करना चाहिए और ऐसे सबूत के लिए आनुषंगिक रूप में और कब्जे के लिए अपने दावे को साबित करने के लिए वह राजस्व अभिलेखों का अवलंब ले सकता है । इस दृष्टि से देखते हुए पेश किए गए साक्ष्य की न्यायालय द्वारा परीक्षा की जानी चाहिए और इसलिए न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि जिला राजस्व अधिकारी के आदेश को क्रियान्वित करने की आवश्यकता नहीं है और तद्नुसार 2018 की सी. एम. पी. (एम. डी.) सं. 4855 में फाइल सिविल प्रकीर्ण आवेदन खारिज किया जाता है । (पैरा 15 और 16)

दोनों पक्षों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर यह पाया गया है कि वादी ने स्पष्ट रूप से यह साबित कर दिया है कि वह संपत्ति पर काबिज था; जब उसने भोगाधिकार बंधक किया तो उसने संपत्ति का कब्जा बंधकदार को सौंपा था; उसने बंधक का मोचन कराया था और संपत्ति का कब्जा वापस लिया था । यह प्रत्यक्ष साक्ष्य मौजूद है । यदि राजस्व प्राधिकारियों के आदेश को भी विचार में लिया जाए तो भी यह आदेश यह अभिनिर्धारित करने के लिए रुकावट नहीं है कि वादी ने संपत्ति का अनन्य कब्जा और उपभोग साबित कर दिया है जो कि व्यादेश को मंजूर करने या मंजूरी से इनकार करने के लिए एक मुख्य कारक है । वादी ने वादपत्र में उस तारीख का उल्लेख किया है जब उसे

प्रथम प्रतिवादी ने बेकब्जा करने की धमकी दी थी । वादपत्र में ऐसी धमकी के लिए हेतुक का भी उल्लेख किया गया है । चूंकि वादी और प्रथम प्रतिवादी के बीच विवाद थे इसलिए दांडिक मामले भी संस्थित किए गए थे । न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि वादी ने संपत्ति का कब्जा और उसका उपभोग साबित कर दिया है । पेश किए गए साक्ष्य से सहमत होने पर न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा दिए गए कारण राजस्व खंड अधिकारी के आदेश पर आधारित होने और अभिलेख पर के मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार न किए जाने के कारण आवश्यक रूप से हस्तक्षेप किए जाने योग्य हैं । तद्नुसार विधि के सारभूत प्रश्न का यह उत्तर दिया जाता है कि प्रथम अपील न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की उपेक्षा करके गलती की है और प्रथम अपील न्यायालय के निष्कर्ष प्राधिकारियों के आदेश पर आधारित हैं तथा साक्ष्य के स्वतंत्र मूल्यांकन पर आधारित नहीं हैं । ऊपर उल्लिखित कारणों से द्वितीय अपील खर्चों सहित मंजूर की जाती है । विद्वान् प्रधान अधीनस्थ न्यायाधीश, कुंबकोणम द्वारा 2001 के ए. एस. सं. 122 में तारीख 3 नवंबर, 2009 को पारित निर्णय और डिक्री अपास्त की जाती है । विद्वान् प्रधान जिला मुंसिफ न्यायालय, कुंबकोणम द्वारा 1999 के मूल वाद सं. 173 में तारीख 4 सितंबर, 2001 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की जाती है । 2018 की सी. एम. पी. (एम. डी.) सं. 4855 में फाइल सिविल प्रकीर्ण आवेदन खारिज किया जाता है । (पैरा 22, 23, 24 और 25)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की द्वितीय अपील (एम. डी.) सं. 14.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री पी. त्यागराजन

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री पी. गोविंदराजन

न्यायमूर्ति सी. वी. कार्तिकेयन – प्रधान जिला मुंसिफ न्यायालय, कुंबकोणम की फाइल पर के 1999 के मूल वाद सं. 173 में के वादी ने हमारे समक्ष यह अपील फाइल की है ।

2. वादी द्वारा 1999 का मूल वाद सं. 173 प्रतिवादी चिन्ना पिल्लई और विश्वनाथन के विरुद्ध फाइल किया गया था जिसमें वादी ने प्रतिवादियों को वाद संपत्ति के उपभोग और शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए निर्णय और डिक्री पारित करने का अनुरोध किया था तथा साथ ही साथ वाद के खर्चों के लिए भी अनुरोध किया गया था ।

3. वाद संपत्ति ग्राम मेलाथूकुरीची, तालुका कुंबकोणम में स्थित है और उसकी नई एस. सं. 417/14 और पुरानी एस. सं. 41/5-बी है । इसकी माप 0.01.0 एयर है जो 2-1/2 सेन्ट के बराबर है । वादी ने यह दावा किया है कि वाद संपत्ति मनाईकूट है जो उसके कब्जे में है और वह इसका पिछले 32 वर्षों से अधिक की अवधि से उपभोग कर रहा है । उससे पूर्व उसके पिता इस पर अनन्य रूप से काबिज थे । वादी के हक में पट्टा भी जारी किया गया था । यह पशु बांधने और सूखी घास रखने तथा कृषि संबंधी वस्तुओं को रखने के काम आती थी । वादी ने वर्ष 1991 में संपत्ति सुब्रहमण्यन के हक में भोगाधिकार के साथ बंधक की थी और उससे 1,000/- रुपए की धनराशि प्राप्त की थी । बाद में उसने संपत्ति का मोचन करा कर उसका कब्जा ले लिया था । प्रतिवादियों का वाद संपत्ति के ऊपर किसी भी रीति में कोई अधिकार नहीं है । दोनों पक्षों की ओर से दांडिक मामले संस्थित किए गए थे । प्रतिवादियों ने वाद संपत्ति में प्रवेश करने का प्रयास किया था । इन परिस्थितियों के अधीन स्थायी व्यादेश का अनुरोध करते हुए वाद फाइल किया गया था ।

4. प्रथम प्रतिवादी ने अपना लिखित कथन फाइल किया था । प्रथम प्रतिवादी के अनुसार वह वाद संपत्ति के ऊपर काबिज था । उसने तहसीलदार द्वारा पट्टा मंजूर किए जाने के विरुद्ध राजस्व खंड अधिकारी के समक्ष अपील फाइल की थी । प्रथम प्रतिवादी ने यह दावा किया कि वह वाद संपत्ति के ऊपर सतत् रूप से काबिज था । उसने यह भी दावा किया कि उसने वादी को धमकियां नहीं दीं और वह वास्तविक रूप से संपत्ति पर काबिज था ।

5. विद्वान् प्रधान जिला मुंसिफ न्यायालय, कुंबकोणम ने उपर्युक्त अभिवचनों के आधार पर विचारण के लिए निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :-

(क) क्या वादी स्थायी व्यादेश के अनुतोष के लिए हकदार है ?

(ख) क्या प्रतिवादियों का यह कथन कि वादी का वाद संपत्ति के ऊपर कोई अधिकार नहीं है, सही है ?

(ग) क्या प्रथम प्रतिवादी वाद संपत्ति के ऊपर काबिज है ?

(घ) वादी किन अन्य अनुतोषों के लिए हक़दार है ?

6. वादी ने विचारण के दौरान 4 साक्षियों की परीक्षा कराई । उसने तीन दस्तावेजों को भी चिह्नांकित कराया । तारीख 30 सितंबर, 1990 का पट्टा प्रदर्श ए-1 है जो वादी के हक में जारी किया गया था । प्रदर्श ए-2 सुब्रहमण्यन के हक में भोगाधिकार के साथ तारीख 25 नवंबर, 1991 का बंधक है । प्रदर्श ए-3 तारीख 17 अप्रैल, 1995 का भोगाधिकार बंधक को रद्द करने का आदेश है । प्रतिवादियों ने भी दो साक्षियों की परीक्षा कराई है और तीन दस्तावेजों को चिह्नांकित कराया है । प्रदर्श बी-1 राजस्व खंड अधिकारी का तारीख 26 नवंबर, 1999 का आदेश है । प्रदर्श बी-2 तारीख 27 नवंबर, 1996 का अभ्यावेदन है जो प्रथम प्रतिवादी द्वारा दिया गया था और प्रदर्श बी-3 अपील है जो प्रथम प्रतिवादी द्वारा सहायक बंदोबस्त अधिकारी, कुंबकोणम के समक्ष फाइल की गई थी ।

7. विद्वान् प्रधान जिला मुंसिफ न्यायालय, कुंबकोणम ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि वादी काबिज था और प्रथम प्रतिवादी यह साबित करने में विफल रहा है कि वह संपत्ति पर काबिज था और परिणामस्वरूप वाद खर्चों के बिना डिक्री कर दिया । इस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रतिवादियों ने 2001 की ए. एस. सं. 122 फाइल की जिसे प्रधान अधीनस्थ न्यायाधीश, कुंबकोणम के समक्ष विचारार्थ रखा गया ।

8. अपील के लंबन के दौरान वादी की मृत्यु हो गई । उसके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर पक्षकार बनाया गया । एक विधिक प्रतिनिधि की भी मृत्यु हो गई और उसके विधिक प्रतिनिधियों को भी अभिलेख पर पक्षकार बनाया गया । विद्वान् प्रधान अधीनस्थ न्यायाधीश

ने अभिलेख पर के साक्ष्य की पुन: परीक्षा की । उसने विचारार्थ विवाद्यक भी विरचित किए । उसने यह पाया कि वादी के हक में मंजूर किया गया पट्टा वस्तुत: राजस्व खंड अधिकारी द्वारा प्रदर्श बी-1 द्वारा रद्द कर दिया गया था । परिणामत: यह अभिनिर्धारित किया गया कि वादी काबिज नहीं था तथापि, प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 3 नवंबर, 2009 के निर्णय द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को उलट दिया और अपील मंजूर करते हुए वाद खारिज कर दिया । प्रत्यर्थियों ने प्रथम अपील में की गई उक्त खारिजी को आक्षेपित करते हुए वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की है ।

9. यह द्वितीय अपील विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्न पर ग्रहण की गई थी :–

> "क्या निचले अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के सुविचारित निष्कर्ष को इस एकमात्र आधार पर उलटते हुए अपीलार्थी-वादियों द्वारा वाद संपत्ति के कब्जे के संबंध में कोई अनुचित निष्कर्ष दिया है कि मृतक वादी के नाम में जारी किया गया पट्टा वाद के लंबन के दौरान रद्द कर दिया गया था और ऐसे रद्दकरण के लिए वाद के लंबन को आधार के रूप में उद्धृत किया है जबकि पट्टा प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के नाम में जारी नहीं किया गया था ?"

10. अपीलार्थियों ने लंबित अपील में 2018 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन (एम. डी.) सं. 4855 फाइल किया । यह आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 21 के अधीन फाइल किया गया था जिसमें अतिरिक्त साक्ष्य अर्थात् जिला राजस्व अधिकारी, थंजावर का तारीख 21 नवंबर, 2002 का आदेश पेश करने के लिए अनुज्ञा हेतु अनुरोध किया गया था । जिला राजस्व अधिकारी ने उक्त आदेश द्वारा राजस्व खंड अधिकारी के आदेश को अपास्त कर दिया जिसे प्रदर्श बी-1 के रूप में चिह्नांकित कराया गया था और जिसका प्रथम अपील न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करने के लिए अवलंब लिया गया था कि वादी काबिज नहीं था ।

11. उक्त आवेदन के समर्थन में फाइल किए गए शपथ-पत्र में यह कहा गया है कि दोनों विद्‌वान् ज्येष्ठ काउंसेलों की जिन्होंने प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष अपील में पैरवी की थी और मूल वादी की मृत्यु हो गई और परिणामत: आदेश निचले अपील न्यायालय के समक्ष फाइल नहीं किया जा सका । यह कहा गया था कि चूंकि आदेश सुसंगत है इसलिए इसे अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए ।

12. इस दलील का प्रथम प्रत्यर्थी द्‌वारा जो वाद में प्रथम प्रतिवादी था, विरोध किया गया है । उसने यह कहते हुए विरोध-पत्र फाइल किया है कि पट्टा रद्द करने का आदेश पारित किया गया था और वह इस कारण से कि वाद लंबित था और परिणामस्वरूप किसी अधिकार का न्यायनिर्णयन नहीं किया गया था और किसी भी प्रकार से पट्टा मंजूर किया जाना हक की मंजूरी के समान नहीं है और इसलिए यह दलील दी गई थी कि उक्त दस्तावेज को अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता । हम द्‌वितीय अपील में दी गई परस्पर विरोधी दलीलों की परीक्षा करने से पूर्व 2018 की सी. एम. पी. (एम. डी.) सं. 4855 पर चर्चा करेंगे ।

13. पक्षकारों को वादी और प्रतिवादियों के रूप में निर्दिष्ट किया जाएगा । वादियों में वादी के विधिक प्रतिनिधि भी सम्मिलित हैं जो इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी हैं । यद्‌यपि विधिक प्रतिनिधि अभिलेख पर हैं तथापि, उन्हें एकल वादी के रूप में निर्दिष्ट किया जाएगा । दोनों प्रत्यर्थियों में लड़ने वाला प्रत्यर्थी प्रथम प्रत्यर्थी है जो विचारण न्यायालय में प्रथम प्रतिवादी था ।

14. वादी ने ग्राम मेलाथूकुरीची तालुका कुंबकोणम में स्थित वाद संपत्ति जिसकी नई एस. सं. 417/14 और पुरानी एस. सं. 41/5-बी. है और जिसका माप 0.01.0 एयर है जो ढाई सेन्ट के समान है, के संबंध में प्रतिवादियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए वाद फाइल किया था । वादी ने कब्जा साबित करने के लिए दस्तावेज फाइल किए थे । उसने तहसीलदार द्‌वारा उसके नाम में मंजूर किया गया पट्टा फाइल किया था । उसने वादपत्र में और साक्ष्य में यह भी कहा है कि उसने सुब्रहमण्यन नामक व्यक्ति के हक में भोगाधिकार के साथ बंधक किया था और इस दस्तावेज को प्रदर्श ए-2 के रूप में चिह्नांकित किया गया

था । उक्त सुब्रहमण्यन को कब्जा दिया गया था और बाद में वादी ने बंधक का मोचन करा लिया था । मोचन रसीद को प्रदर्श ए-2 के रूप में चिहनांकित किया गया है ।

15. इसके प्रतिकूल प्रथम प्रतिवादी ने यह दावा किया है कि वह वाद संपत्ति पर काबिज था । उसने वादी के नाम में पट्टा प्रदर्श ए-1 को रद्द करने वाला राजस्व खंड अधिकारी का आदेश प्रदर्श बी-1 फाइल किया है । यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि 1999 के मूल वाद सं. 173 में निर्णय तारीख 4 सितंबर, 2001 को पारित किया गया था । 2001 के ए. एस. सं. 121 में निर्णय तारीख 3 नवंबर, 2009 को पारित किया गया था । अब तारीख 21 नवंबर, 2002 के दस्तावेज को पेश करने की ईप्सा की गई है । यह आदेश मूल वाद में पारित निर्णय के पश्चात् जिला राजस्व अधिकारी द्वारा पारित किया गया था । तथापि, उक्त दस्तावेज प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया था ।

16. पट्टा मंजूर करने वाले, पट्टा रद्द करने वाले और तत्पश्चात् पट्टा रद्द करने वाले आदेश राजस्व प्राधिकारियों द्वारा पारित किए गए हैं । तथापि, वादी ने कब्जे को साबित करने के लिए अपना स्वयं का कथन किया है । प्रथम अपील न्यायालय ने राजस्व दस्तावेजों के आधार पर अपने निष्कर्ष दिए हैं । किसी न्यायालय का निष्कर्ष उसके समक्ष पेश किए गए दस्तावेजों पर आधारित होना चाहिए । राजस्व दस्तावेज किसी तथ्य को साबित करने के लिए सुसंगत हो सकते हैं तथापि, वे निर्णय के लिए आधार नहीं बन सकते । वादी को स्वतंत्र रूप से कब्जा साबित करना चाहिए और ऐसे सबूत के लिए आनुषंगिक रूप में और कब्जे के लिए अपने दावे को साबित करने के लिए वह राजस्व अभिलेखों का अवलंब ले सकता है । इस दृष्टि से देखते हुए पेश किए गए साक्ष्य की न्यायालय द्वारा परीक्षा की जानी चाहिए और इसलिए मैं यह अभनिर्धारित करता हूं कि जिला राजस्व अधिकारी के आदेश को क्रियान्वित करने की आवश्यकता नहीं है और तद्नुसार 2018 की सी. एम. पी. (एम. डी.) सं. 4855 में फाइल सिविल प्रकीर्ण आवेदन खारिज किया जाता है ।

17. अब मैं यह अवधारित करने के लिए पहले ही अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की परीक्षा करने के लिए अग्रसर होता हूं कि क्या वादी

ने यह साबित कर दिया है या नहीं कि वह संपत्ति पर काबिज है । जब एक बार अभिलेख पर के साक्ष्य की परीक्षा न की गई हो तो नैसर्गिक रूप से यह कहा जा सकता है कि निचला अपील न्यायालय केवल राजस्व अभिलेखों के आधार पर कब्जे के संबंध में अपना निष्कर्ष देने में सही नहीं था ।

18. वादी ने विचारण के दौरान पी. डब्ल्यू.-1 के रूप में अपनी परीक्षा कराई है । उसने प्रदर्श ए-2 और प्रदर्श ए-3 को चिह्नांकित कराया है । प्रदर्श ए-2 भोगाधिकार बंधक है जो वादी द्वारा तारीख 25 नवंबर, 1991 को सुब्रहमण्यन पुत्र राजा मणिका मिस्त्री के हक में सृजित किया गया था । चूंकि स्टाम्प पत्रों का जिस पर दस्तावेज लिखा गया था, मूल्य अपर्याप्त था इसलिए कमी को अतिरिक्त स्टाम्प शुल्क द्वारा पूरा किया गया था । शास्ति भी अधिरोपित की गई थी । शास्ति भी संदत्त कर दी गई थी । अत: इस न्यायालय द्वारा दस्तावेज की परीक्षा की जा सकती है । वादी ने दस्तावेज में स्पष्ट रूप से यह कहा है कि वाद संपत्ति (स्थानीय भाषा का लोप किया गया) थी, जिसका नैसर्गिक रूप से यह अर्थ है कि वह वाद संपत्ति पर काबिज था । दस्तावेज में वाद संपत्ति का विवरण भी दिया गया था । वादी ने दस्तावेज में यह भी उल्लेख किया था कि संपत्ति उक्त सुब्रहमण्यन के पास बंधक रखी जा रही है और इस संबंध में उसने 1,000/- रुपए की नकद धनराशि प्राप्त की है । बंधक की अवधि 3 वर्ष थी । बंधकदार सुब्रहमण्यन को बाद में कब्जा दिया गया था । यह कहा गया था (स्थानीय भाषा का लोप किया गया) जिसका नैसर्गिक रूप से यह अर्थ है कि वादी मूल रूप से काबिज था और वादी द्वारा सृजित बंधक के कारण उसने सुब्रहमण्यन को कब्जा प्रदत्त किया था ।

19. वादी ने इस दस्तावेज के समर्थन में छेलापेरुमल की पी. डब्ल्यू.-2 के रूप में परीक्षा कराई है । छेलापेरुमल पुत्र रामासामी पड्याची दूसरा साक्षी था । उसने अपनी प्रति-परीक्षा में दस्तावेज पर अपने हस्ताक्षरों की पुष्टि की है । उसने यह कथन किया है कि बंधकदार सुब्रहमण्यन द्वारा उससे साक्षी के रूप में हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया था । यह पर्याप्त है क्योंकि बंधक सृजित करते समय

इस बात की कोई गारंटी नहीं थी कि वादी इसका मोचन कराने की स्थिति में होगा । अत: पी. डब्ल्यू.-2 एक ऐसा साक्षी नहीं है जिसका वादी के साथ कोई लगाव हो । वह प्रथम प्रतिवादी को भी जानता था । उसकी विस्तृत प्रति-परीक्षा की गई है ।

20. वादी ने बंधक के समर्थन में अपनी अर्थात् सुब्रहमण्यन की पी. डब्ल्यू.-3 के रूप में परीक्षा कराई है । उसने इस बात की पुष्टि की है कि उसने वादी को 1,000/- रुपए धनराशि दी थी और संपत्ति का कब्जा प्राप्त किया था । उसने यह प्रकथन किया है कि संपत्ति वादी के कब्जे में थी । उसने बंधक के निर्मोचन की भी पुष्टि की है । इसे प्रदर्श ए-3 के रूप में चिह्नांकित किया गया है और यह दस्तावेज तारीख 17 अप्रैल, 1995 का था । पी. डब्ल्यू.-3 ने बंधक के मोचन के बारे में यह कहा है कि उसने मोचन के समय वादी को कब्जा वापस दे दिया था ।

21. प्रतिवादियों की ओर से कब्जे को साबित करने के लिए प्रतिवादियों ने केवल प्रदर्श बी-1 को चिह्नांकित कराया है जो राजस्व खंड अधिकारी का आदेश है । प्रतिवादी से यह भी प्रत्याशा की गई है वह कब्जे को साबित करने के लिए स्वतंत्र साक्ष्य प्रस्तुत करे । स्वतंत्र साक्ष्य में दस्तावेजी साक्ष्य को भी सम्मिलित किया जा सकता है । प्रदर्श बी-2 और प्रदर्श बी-3 किसी भी प्रकार से प्रतिवादियों की सहायता नहीं करते । प्रतिवादी द्वारा स्वयं के सिवाय परीक्षा कराया गया दूसरा साक्षी मुरगेशन डी. डब्ल्यू.-2 है । उसने यह कथन किया है कि संपत्ति प्रथम प्रतिवादी के कब्जे में थी । उसने यह कथन किया है कि उसे संपत्ति की सर्वेक्षण संख्या के बारे में जानकारी नहीं है । वह संपत्ति का क्षेत्रफल नहीं जानता है । उसने यह कथन किया है कि साक्ष्य दिए जाने से ठीक दो दिन पहले उसे इस सिविल वाद के बारे में पता चला । साक्ष्य देने के लिए उसे सूचना जारी नहीं की गई थी । उसका साक्ष्य किसी भी प्रकार से स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है ।

22. दोनों पक्षों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर यह पाया गया है कि वादी ने स्पष्ट रूप से यह साबित कर दिया है कि वह संपत्ति पर काबिज था ; जब उसने भोगाधिकार बंधक किया तो उसने संपत्ति का कब्जा बंधकदार को सौंपा था ; उसने बंधक का मोचन कराया था और संपत्ति का कब्जा वापस लिया था । यह प्रत्यक्ष साक्ष्य

मौजूद है । यदि राजस्व प्राधिकारियों के आदेश को भी विचार में लिया जाए तो भी यह आदेश यह अभिनिर्धारित करने के लिए रूकावट नहीं है कि वादी ने संपत्ति का अनन्य कब्जा और उपभोग साबित कर दिया है जो कि व्यादेश को मंजूर करने या मंजूरी से इनकार करने के लिए एक मुख्य कारक है ।

23. वादी ने वादपत्र में उस तारीख का उल्लेख किया है जब उसे प्रथम प्रतिवादी ने बेकब्जा करने की धमकी दी थी । वादपत्र में ऐसी धमकी के लिए हेतुक का भी उल्लेख किया गया है । चूंकि वादी और प्रथम प्रतिवादी के बीच विवाद थे इसलिए दांडिक मामले भी संस्थित किए गए थे । मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि वादी ने संपत्ति का कब्जा और उसका उपभोग साबित कर दिया है ।

24. पेश किए गए साक्ष्य से सहमत होने पर मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा दिए गए कारण राजस्व खंड अधिकारी के आदेश पर आधारित होने और अभिलेख पर के मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार न किए जाने के कारण आवश्यक रूप से हस्तक्षेप किए जाने योग्य हैं । तद्नुसार विधि के सारभूत प्रश्न का यह उत्तर दिया जाता है कि प्रथम अपील न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की उपेक्षा करके गलती की है और प्रथम अपील न्यायालय के निष्कर्ष प्राधिकारियों के आदेश पर आधारित हैं तथा साक्ष्य के स्वतंत्र मूल्यांकन पर आधारित नहीं हैं ।

25. ऊपर उल्लिखित कारणों से द्वितीय अपील खर्चों सहित मंजूर की जाती है । विद्वान् प्रधान अधीनस्थ न्यायाधीश, कुंबकोणम द्वारा 2001 के ए. एस. सं. 122 में तारीख 3 नवंबर, 2009 को पारित निर्णय और डिक्री अपास्त की जाती है । विद्वान् प्रधान जिला मुंसिफ, कुंबकोणम द्वारा 1999 के मूल वाद सं. 173 में तारीख 4 सितंबर, 2001 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की जाती है । 2018 की सी. एम. पी. (एम. डी.) सं. 4855 में फाइल सिविल प्रकीर्ण आवेदन खारिज किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

राम स्वरूप सिंह गूजर

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 25 अक्तूबर, 2018

न्यायमूर्ति जी. एस. अहलूवालिया

मध्य प्रदेश पंचायत राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम, 1994 (1994 का 1) – धारा 40 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14] – निर्वाचित सरपंच – वित्तीय अनियमितता के आधार पर पद से हटाया जाना – पदधारित व्यक्ति को हटाने से पूर्व सुनवाई का कोई अवसर न दिया जाना – नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण का प्रश्न – त्रुटिपूर्ण जांच के आधार पर पद से हटाने की कार्यवाही का अनुमोदन नहीं किया जा सकता – अत: पद से हटाने के आदेश को अभिखंडित करके मामला विधि के अनुसार निपटाने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाना चाहिए ।

वर्तमान याचिका के निपटान के लिए संक्षेप में आवश्यक तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी सं. 5 ग्राम पंचायत जडेरू, जनपद पंचायत पहाड़गढ़, जिला मुरैना के सरपंच के रूप में निर्वाचित हुआ था । प्रत्यर्थी सं. 5 और ग्राम पंचायत के अन्य कर्मचारियों के विरुद्ध वित्तीय अनियमितताओं के संबंध में कतिपय शिकायतें की गई थीं और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 5 के विरुद्ध पृथक् जांच आरंभ की गई थी । यह भी अविवादित है कि जांच अधिकारी द्वारा पृथक्/प्रारंभिक जांच करने के दौरान जांच अधिकारी द्वारा सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया । इसके पश्चात् तारीख 17 अप्रैल, 2017 को प्रत्यर्थी सं. 5 को इस बारे में एक कारण बताओ सूचना जारी की गई थी कि उसे अधिनियम, 1993 की धारा 40 के अधीन शक्ति के प्रयोग द्वारा सरपंच के पद से क्यों न हटाया जाए । प्रत्यर्थी सं. 5 के विरुद्ध ये अभिकथन किए गए थे कि उसने 4,770/- रुपए का दुर्विनियोग किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 5 को अन्य

सूचनाएं भेजी गई थीं और अंतिम सूचना तारीख 26 अक्तूबर, 2017 को भेजी गई थी और तद्नुसार प्रत्यर्थी सं. 5 ने तारीख 7 नवंबर, 2017 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया था । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 3 (मुख्य कार्यपालक अधिकारी, जिला पंचायत, मुरैना) ने तारीख 16 नवंबर, 2017 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 5 के विरुद्ध पेश की गई जांच रिपोर्ट के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी सं. 5 द्वारा प्रस्तुत किया गया उत्तर संतोषप्रद नहीं है क्योंकि जांच अधिकारी ने जांच रिपोर्ट में यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाला है कि वित्तीय अनियमितताएं की गई हैं और 4,770/- रुपए की राशि का दुर्विनियोग किया गया है, इसलिए अधिनियम, 1993 की धारा 40 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रत्यर्थी सं. 5 को सरपंच के पद से हटाया गया था । प्रत्यर्थी सं. 5 ने तारीख 16 नवंबर, 2017 के हटाए जाने के आदेश से व्यथित होकर प्रत्यर्थी सं. 2/आयुक्त, चंबल डिवीजन, मुरैना के समक्ष अपील फाइल की और प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 6 मार्च, 2018 के आदेश द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी सं. 5 के विरुद्ध पृथक् जांच/प्रारंभिक जांच उसकी अनुपस्थिति में की गई थी और चूंकि उसे सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था इसलिए नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पूर्ण रूप से अतिक्रमण हुआ है और तद्नुसार सी. ई. ओ. जिला पंचायत मुरैना द्वारा पारित आदेश अपास्त कर दिया गया था । भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह रिट याचिका आयुक्त चंबल डिवीजन, मुरैना द्वारा तारीख 6 मार्च, 2018 को पारित उस आदेश (उपाबंध पी/1) को प्रश्नगत करते हुए फाइल की गई है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 5 द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर करते हुए मध्य प्रदेश पंचायत राज एवम् ग्राम स्वराज अधिनियम, 1993 की धारा 40 के अधीन पारित आदेश को अपास्त किया गया है । रिट याचिका भागत: मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यर्थी सं. 5 के विरुद्ध विरचित आरोप तुच्छ प्रकृति के हैं या नहीं और क्या प्रत्यर्थी सं. 5 इन आरोपों के आधार पर हटाए जाने के लिए दायी है और क्या उसे केवल तभी हटाया जाएगा जब प्रत्यर्थी के विरुद्ध अभिकथित आरोप साबित हो गए हों । अत: यह स्पष्ट है कि जहां आदेश को इस आधार पर अपास्त किया गया हो

कि उस रीति का जिसमें निष्कर्ष निकाले गए हैं, अनुमोदन नहीं किया जा सकता, वहां अपील प्राधिकारी के पास एकमात्र उपलब्ध विकल्प यह है कि उसे मामले को प्रतिप्रेषित करते हुए विहित प्राधिकारी को अभिकथनों के आधार पर नए सिरे से विनिश्चय करने के लिए भेजना चाहिए । तद्नुसार इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा तारीख 16 नवंबर, 2017 के आदेश को अभिखंडित करते हुए मामला प्रत्यर्थी सं. 3 को सुनवाई का समुचित अवसर देने के पश्चात् नए सिरे से विनिश्चय करने के लिए प्रतिप्रेषित करना चाहिए था । कारण बताओ सूचना जो प्रत्यर्थी सं. 5 को दी गई थी, के अनुसार अभिकथन ये हैं कि प्रत्यर्थी सं. 5 और पंचायत के अन्य पदाधिकारियों द्वारा 4,470/- रुपए की कुल धनराशि का दुर्विनियोग किया गया है । जहां कोई पदाधिकारी नागरिकों द्वारा निर्वाचित किया गया है वहां उसे अनौपचारिक रीति में नहीं हटाया जाना चाहिए । यह सही है कि गलतियां जो मामूली प्रकृति की हैं, किसी निर्वाचित पदाधिकारी को हटाने के लिए आधार नहीं बनायी जानी चाहिए । अत: निश्चित रूप से जहां प्रत्यर्थी सं. 3 इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि याची सहित तीन व्यक्तियों द्वारा 4,470/- रुपए की धनराशि का दुर्विनियोग किया गया था वहां उसे इस तथ्य को भी विचार में लेना होगा कि उक्त धनराशि सचिव, ग्राम पंचायत द्वारा पहले ही जमा कर दी गई है । तद्नुसार प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा तारीख 6 मार्च, 2018 को पारित आदेश की इस उपांतरण के साथ पुष्टि की जाती है कि मामला सी. ई. ओ. जिला पंचायत, मुरैना को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् विधि के अनुसार नए सिरे से जांच करने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाएगा, जैसाकि इस न्यायालय द्वारा विभिन्न अवसरों पर अभिनिर्धारित किया गया है । (पैरा 17, 19 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2009] 2009 (3) एम. पी. एल. जे. 370 :
मनीता जयवार बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य** ; 10

[2009]	(2009) 2 एम. पी. एच. टी. 68 : **श्रीमती फूल बाई** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य** ;	11
[2004]	2004 (1) एम. पी. एल. जे. 27 : **बबीता लिलहरे** बनाम **सुरेन्द्र राणा और अन्य** ;	9
[2004]	2004 (4) एम. पी. एल. जे. 6 : **राजेन्द्र सिंह रघुवंशी** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य** ;	8
[2003]	ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2041 = (2003) 4 एस. सी. सी. 557 : **केनरा बैंक और अन्य** बनाम **देवाशीष दास और अन्य** ;	18
[2003]	2003 (2) एम. पी. एल. जे. 112 : **मंगो बाई** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य** ।	12

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2018 की रिट याचिका सं. 6031.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री गौरव मिश्रा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री विवेक जैन सरकारी अधिवक्ता, तपेन्द्र शर्मा और अनिल कुमार सक्सेना

न्यायमूर्ति जी. एस. अहलूवालिया – भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह रिट याचिका आयुक्त चंबल डिवीजन, मुरैना द्वारा तारीख 6 मार्च, 2018 को पारित उस आदेश (उपाबंध पी/1) को प्रश्नगत करते हुए फाइल की गई है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 5 द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर करते हुए मध्य प्रदेश पंचायत राज एवम् ग्राम स्वराज अधिनियम, 1993 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम, 1993' कहा गया है) की धारा 40 के अधीन पारित आदेश को अपास्त किया गया है ।

2. वर्तमान याचिका के निपटान के लिए संक्षेप में आवश्यक तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी सं. 5 ग्राम पंचायत जडेरू, जनपद पंचायत पहाड़गढ़, जिला मुरैना के सरपंच के रूप में निर्वाचित हुआ था । प्रत्यर्थी सं. 5 और ग्राम पंचायत के अन्य कर्मचारियों के विरुद्ध वित्तीय अनियमितताओं के संबंध में कतिपय शिकायतें की गई थीं और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 5 के विरुद्ध पृथक् जांच आरंभ की गई थी । यह भी अविवादित है कि जांच अधिकारी द्वारा पृथक्/प्रारंभिक जांच करने के दौरान जांच अधिकारी द्वारा सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया । इसके पश्चात् तारीख 17 अप्रैल, 2017 को प्रत्यर्थी सं. 5 को इस बारे में एक कारण बताओ सूचना जारी की गई थी कि उसे अधिनियम, 1993 की धारा 40 के अधीन शक्ति के प्रयोग द्वारा सरपंच के पद से क्यों न हटाया जाए । प्रत्यर्थी सं. 5 के विरुद्ध ये अभिकथन किए गए थे कि उसने 4,770/- रुपए का दुर्विनियोग किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 5 को अन्य सूचनाएं भेजी गई थीं और अंतिम सूचना तारीख 26 अक्तूबर, 2017 को भेजी गई थी और तद्नुसार प्रत्यर्थी सं. 5 ने तारीख 7 नवंबर, 2017 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया था । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 3 (मुख्य कार्यपालक अधिकारी, जिला पंचायत, मुरैना) ने तारीख 16 नवंबर, 2017 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 5 के विरुद्ध पेश की गई जांच रिपोर्ट के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी सं. 5 द्वारा प्रस्तुत किया गया उत्तर संतोषप्रद नहीं है क्योंकि जांच अधिकारी ने जांच रिपोर्ट में यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाला है कि वित्तीय अनियमितताएं की गई हैं और 4,770/- रुपए की राशि का दुर्विनियोग किया गया है, इसलिए अधिनियम, 1993 की धारा 40 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रत्यर्थी सं. 5 को सरपंच के पद से हटाया गया था ।

3. प्रत्यर्थी सं. 5 ने तारीख 16 नवंबर, 2017 के हटाए जाने के आदेश से व्यथित होकर प्रत्यर्थी सं. 2/आयुक्त, चंबल डिवीजन, मुरैना के समक्ष अपील फाइल की और प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 6 मार्च, 2018 के आदेश द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी सं. 5 के विरुद्ध पृथक् जांच/प्रारंभिक जांच उसकी अनुपस्थिति में की गई थी और चूंकि उसे सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था इसलिए नैसर्गिक न्याय के

सिद्धांतों का पूर्ण रूप से अतिक्रमण हुआ है और तद्नुसार सी. ई. ओ. जिला पंचायत मुरैना द्वारा पारित आदेश अपास्त कर दिया गया था ।

4. याची के विद्वान् काउंसेल ने प्रत्यर्थी सं. 2/आयुक्त चंबल डिवीजन, मुरैना द्वारा पारित आदेश को आक्षेपित करते हुए यह दलील दी है कि यह कहना गलत है कि प्रत्यर्थी सं. 5 को सुनवाई का समुचित अवसर नहीं दिया गया था और इसके अतिरिक्त यह निष्कर्ष निकालने के पश्चात् कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रमण हुआ है, प्रत्यर्थी सं. 5 को सम्पूर्ण कार्यवाहियों को अभिखंडित न करके मामला सी. ई. ओ. जिला पंचायत, मुरैना को प्रतिप्रेषित करना चाहिए था ।

5. प्रत्यर्थी सं. 5 के काउंसेल ने यह दलील दी है कि पृथक् जांच/प्रारंभिक जांच प्रत्यर्थी सं. 5 की अनुपस्थिति में की गई थी और चूंकि सी. ई. ओ. जिला पंचायत, मुरैना द्वारा प्रत्यर्थी सं. 5 को सुनवाई का समुचित अवसर नहीं दिया गया था, इसलिए प्रत्यर्थी सं. 2 ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रमण हुआ है और इन परिस्थितियों के अधीन प्रत्यर्थी सं. 2 ने संपूर्ण कार्यवाहियों को अभिखंडित करने में कोई गलती नहीं की है ।

6. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना गया ।

7. जहां तक नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण का प्रश्न है, याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि आरंभत: शिकायत की जांच श्री नीरज श्रीवास्तव, ए. पी. ओ. द्वारा की गई थी और चूंकि यह एक प्रारंभिक जांच/पृथक् जांच थी इसलिए जांच अधिकारी द्वारा प्रत्यर्थी सं. 5 को सुनवाई का अवसर दिया जाना आवश्यक नहीं था । तद्नुसार एक कारण बताओ सूचना जारी की गई थी और तारीख 7 नवंबर, 2017 को प्रत्यर्थी सं. 5 से उत्तर प्राप्त होने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 3/सी. ई. ओ. जिला पंचायत, मुरैना ने तारीख 16 नवंबर, 2017 को अंतिम आदेश पारित करते हुए प्रत्यर्थी सं. 5 को सरपंच के पद से हटा दिया था । अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाला कुछ नहीं है कि सी. ई. ओ. जिला पंचायत, मुरैना ने हटाए जाने के आदेश को पारित करने से पूर्व कोई जांच की थी । प्रत्यर्थी सं. 3 ने ए. पी. ओ. द्वारा प्रस्तुत की गई जांच रिपोर्ट

का अवलंब लिया था और अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाला कुछ भी नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 5 से कोई आक्षेप या स्पष्टीकरण आमंत्रित करते हुए उसे कभी भी उक्त जांच रिपोर्ट की प्रति दी गई थी । अन्यथा भी ए. पी. ओ. ने प्रत्यर्थी सं. 5 को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान नहीं किया था । अतः यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष प्रत्यर्थी सं. 5 की अनुपस्थिति में निकाला गया था और अंतिम आदेश पारित करने से पूर्व उक्त जांच रिपोर्ट के संबंध में उसे आपत्ति फाइल करने या स्पष्टीकरण देने के लिए कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था ।

8. इस न्यायालय द्वारा **राजेन्द्र सिंह रघुवंशी** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां सक्षम प्राधिकारी द्वारा किसी जांच रिपोर्ट का पूर्व अधिकारी से प्राप्त जांच की प्रति प्रदत्त किए बिना अवलंब लिया गया हो वहां ऐसी जांच नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन न किए जाने के कारण दूषित होगी ।

9. इस न्यायालय द्वारा **बबीता लिलहरे** बनाम **सुरेन्द्र राणा और अन्य**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी सरपंच को हटाने के लिए की गई कार्यवाहियों में साक्षियों की परीक्षा की जानी चाहिए और ऐसे सरपंच को इन साक्षियों की प्रति-परीक्षा करने के लिए अवसर दिया जाना चाहिए ।

10. **मनीता जयवार** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य**[3] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा हटाने का आदेश पारित करने से पूर्व समुचित जांच नहीं की गई है, वहां मामले को नए सिरे से जांच करने के लिए सक्षम प्राधिकारी को वापस भेजा जाना चाहिए ।

11. **श्रीमती फूल बाई** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य**[4] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां अधिकारियों द्वारा

---

[1] 2004 (4) एम. पी. एल. जे. 6.

[2] 2004 (1) एम. पी. एल. जे. 27.

[3] 2009 (3) एम. पी. एल. जे. 370.

[4] (2009) 2 एम. पी. एच. टी. 68.

जांच रिपोर्ट तैयार की गई हो और वे प्रति-परीक्षा के लिए उपस्थित नहीं हुए हों, तथापि, विहित प्राधिकारी ने ऐसी जांच रिपोर्ट के आधार पर आरोपी पदाधिकारी को आरोपों का दोषी ठहराने के लिए कार्यवाही की हो वहां यह ऋजु विचारण नहीं होगा और ऐसी त्रुटिपूर्ण जांच द्वारा हटाए जाने के आदेश पर अनुमोदन की मोहर नहीं लगाई जा सकती ।

12. **मंगो बाई** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि केवल गुप्त जांच/प्रारंभिक जांच पर्याप्त नहीं है और विहित प्राधिकारी को विधि के अनुसार जांच करनी चाहिए ।

13. इन परिस्थितियों के अधीन जहां परिणाम शास्तिक प्रकृति के हैं और न केवल पदाधिकारी को उसके पद से हटाया गया है अपितु 6 वर्ष की अवधि के लिए निरर्हित भी किया गया है वहां इस अधिनियम के अधीन निर्वाचित किए जाने वाले व्यक्ति के संबंध में इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि उस रीति को जिसमें सी. ई. ओ., जिला पंचायत द्वारा आदेश पारित किया गया है, अनुमोदित करने की मुहर नहीं लगाई जा सकती क्योंकि तारीख 16 नवंबर, 2017 का आदेश पूर्ण रूप से नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण में पारित किया गया है । अत: प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण के संबंध में निकाले गए निष्कर्षों की पुष्टि की जाती है ।

14. अवधारण के लिए अगला प्रश्न यह है कि जहां कार्यवाहियां नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण के आधार पर अभिखंडित की गई हों वहां क्या मामले को विधि के अनुसार विहित अधिकारी को नए सिरे से विनिश्चय करने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाना चाहिए अथवा क्या सम्पूर्ण कार्यवाहियां अभिखंडित की जानी चाहिए ।

15. प्रत्यर्थी सं. 5 के काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि जहां कोई पदाधिकारी किसी स्थान के निवासियों द्वारा निर्वाचित किया गया है वहां उसे तुच्छ आरोपों के आधार पर नहीं हटाया जाना चाहिए और इन परिस्थितियों के

---

[1] 2003 (2) एम. पी. एल. जे. 112.

अधीन आयुक्त चंबल डिवीजन, मुरैना द्‌वारा सम्पूर्ण कार्यवाहियां अभिखंडित करने में कोई गलती नहीं की गई है ।

16. प्रत्यर्थी के विद्‌वान् काउंसेल द्‌वारा तथा याची के विद्‌वान् काउंसेल द्‌वारा दी गई दलीलों पर विचार किया गया ।

17. प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यर्थी सं. 5 के विरुद्ध विरचित आरोप तुच्छ प्रकृति के हैं या नहीं और क्या प्रत्यर्थी सं. 5 इन आरोपों के आधार पर हटाए जाने के लिए दायी है और क्या उसे केवल तभी हटाया जाएगा जब प्रत्यर्थी के विरुद्ध अभिकथित आरोप साबित हो गए हों ।

18. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **केनरा बैंक और अन्य** बनाम **देवाशीष दास और अन्य**[1] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "……..जहां किसी आदेश को नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण में होने के कारण अविधिमान्य होने के रूप में अभिखंडित किया जाता है वहां चूंकि मामले में अंतिम विनिश्चय नहीं हुआ है इसलिए नए सिरे से कार्यवाहियों के लिए विकल्प खुला रहता है । निष्कर्ष यह है कि इसमें अन्तर्निहित त्रुटि के आधार पर आक्षेपित आदेश को रद्द किया गया है तथापि, कार्यवाहियां पर्यवसित नहीं की गई हैं ।"

19. अत: यह स्पष्ट है कि जहां आदेश को इस आधार पर अपास्त किया गया हो कि उस रीति का जिसमें निष्कर्ष निकाले गए हैं, अनुमोदन नहीं किया जा सकता, वहां अपील प्राधिकारी के पास एकमात्र उपलब्ध विकल्प यह है कि उसे मामले को प्रतिप्रेषित करते हुए विहित प्राधिकारी को अभिकथनों के आधार पर नए सिरे से विनिश्चय करने के लिए भेजना चाहिए । तद्‌नुसार इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि प्रत्यर्थी सं. 2 द्‌वारा तारीख 16 नवंबर, 2017 के आदेश को अभिखंडित करते हुए मामला प्रत्यर्थी सं. 3 को सुनवाई का समुचित अवसर देने के पश्चात् नए सिरे से विनिश्चय करने के लिए प्रतिप्रेषित करना चाहिए था । कारण बताओ सूचना जो प्रत्यर्थी सं. 5 को दी गई थी, के अनुसार अभिकथन ये हैं

[1] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2041 = (2003) 4 एस. सी. सी. 557.

कि प्रत्यर्थी सं. 5 और पंचायत के अन्य पदाधिकारियों द्वारा 4,470/- रुपए की कुल धनराशि का दुर्विनियोग किया गया है । जहां कोई पदाधिकारी नागरिकों द्वारा निर्वाचित किया गया है वहां उसे अनौपचारिक रीति में नहीं हटाया जाना चाहिए । यह सही है कि गलतियां जो मामूली प्रकृति की हैं, किसी निर्वाचित पदाधिकारी को हटाने के लिए आधार नहीं बनायी जानी चाहिए । अत: निश्चित रूप से जहां प्रत्यर्थी सं. 3 इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि याची सहित तीन व्यक्तियों द्वारा 4,470 रुपए की धनराशि का दुर्विनियोग किया गया था वहां उसे इस तथ्य को भी विचार में लेना होगा कि उक्त धनराशि सचिव, ग्राम पंचायत द्वारा पहले ही जमा कर दी गई है ।

20. तद्नुसार प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा तारीख 6 मार्च, 2018 को पारित आदेश की इस उपांतरण के साथ पुष्टि की जाती है कि मामला सी. ई. ओ. जिला पंचायत, मुरैना को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् विधि के अनुसार नए सिरे से जांच करने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाएगा, जैसाकि इस न्यायालय द्वारा विभिन्न अवसरों पर अभिनिर्धारित किया गया है ।

21. याचिका भागत: मंजूर की जाती है ।

याचिका भागत: मंजूर की गई ।

मह.

संसद् के अधिनियम

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000

(2000 का अधिनियम संख्यांक 21)

[9 जून, 2000]

इलैक्ट्रानिक डाटा के आदान-प्रदान द्वारा और इलैक्ट्रानिक संसूचना के अन्य साधनों द्वारा, जिन्हें सामान्यतया "इलैक्ट्रानिक वाणिज्य" कहा जाता है और जिनमें संसूचना और सूचना के भंडारण के कागज-आधारित तरीकों के अनुकल्पों का उपयोग अंतर्वलित है, किए गए संव्यवहारों को विधिक मान्यता देने, सरकारी अभिकरणों में दस्तावेजों को इलैक्ट्रानिक रूप से फाइल करना सुकर बनाने और भारतीय दंड संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872, बैंककार बही साक्ष्य अधिनियम, 1891 और भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 का और संशोधन करने तथा उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने तारीख 30 जनवरी, 1997 के संकल्प ए/आरईएस/51/162 द्वारा अंतरराष्ट्रीय व्यापार विधि से संबंधित संयुक्त राष्ट्र आयोग द्वारा अंगीकार की गई इलैक्ट्रानिक वाणिज्य संबंधी आदर्श विधि को अंगीकार कर लिया है ;

उक्त संकल्प में, अन्य बातों के साथ, यह सिफारिश की गई है कि सभी राज्य, जब वे अपनी विधियों का अधिनियमन या पुनरीक्षण करें, संसूचना और सूचना के भंडारण के कागज-आधारित तरीकों के अनुकल्पों को लागू होने वाली विधि की एकरूपता की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, उक्त आदर्श विधि पर अनुकूल ध्यान दें ;

उक्त संकल्प को प्रभावी करना और विश्वसनीय इलैक्ट्रानिक अभिलेखों द्वारा सरकारी सेवाएं दक्षतापूर्वक देने का संवर्धन करना आवश्यक समझा गया है ;

भारत गणराज्य के इक्यावनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1
प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और लागू होना – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 है ।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर होगा और, इस अधिनियम में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, यह किसी व्यक्ति द्वारा भारत के बाहर किए गए किसी अपराध या इसके अधीन उल्लंघन को भी लागू होता है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, नियत करे और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी और किसी ऐसे उपबंध में इस अधिनियम के प्रारंभ के प्रति किसी निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस उपबंध के प्रारम्भ के प्रति निर्देश है ।

[1][(4) इस अधिनियम की कोई बात, पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट दस्तावेजों या संव्यवहारों को लागू नहीं होगी :

परंतु केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा पहली अनुसूची का, उसमें प्रविष्टियों को जोड़कर या हटाकर संशोधन कर सकेगी ।

(5) उपधारा (4) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी ।]

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित ।

2. परिभाषाएं – (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "अभिगम" से, इसके व्याकरणिक रूपभेदों और सजातीय पदों सहित, अभिप्रेत है कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क में प्रवेश प्राप्त करना, उसके तर्कसंगत, अंकगणितीय अथवा स्मृति फलन संसाधनों के द्‌वारा अनुदेश देना या संसूचना देना ;

(ख) "प्रेषिती" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो इलैक्ट्रानिक अभिलेख प्राप्त करने के लिए प्रवर्तक द्‌वारा आशयित है किन्तु इसके अंतर्गत कोई मध्यवर्ती नहीं है ;

(ग) "न्यायनिर्णायक अधिकारी" से धारा 46 की उपधारा (1) के अधीन नियुक्त न्यायनिर्णायक अधिकारी अभिप्रेत है ;

(घ) [1]["इलैक्ट्रानिक चिह्नक] लगाना" से, इसके व्याकरणिक रूपभेदों और सजातीय पदों सहित अभिप्रेत है किसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख को [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] द्‌वारा अधिप्रमाणित करने के प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति द्‌वारा कोई कार्यपद्धति या प्रक्रिया अंगीकार करना ;

(ङ) "समुचित सरकार" से, –

(i) संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 2 में प्रगणित,

(ii) संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 3 के अधीन अधिनियमित किसी राज्य विधि से संबंधित,

किसी विषय के संबंध में राज्य सरकार और किसी अन्य दशा में केन्द्रीय सरकार अभिप्रेत है ;

(च) "असममित गूढ़ प्रणाली" से सुरक्षित कुंजी युग्म की कोई प्रणाली अभिप्रेत है जिसमें [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] सृजित करने के

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्‌वारा प्रतिस्थापित ।

लिए एक प्राइवेट कुंजी और [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] को सत्यापित करने के लिए एक लोक कुंजी है ;

(छ) "प्रमाणकर्ता प्राधिकारी" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसे धारा 24 के अधीन [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र जारी करने के लिए अनुज्ञप्ति दी गई है ;

(ज) "प्रमाणीकरण पद्धति विवरण" से प्रमाणकर्ता प्राधिकारी द्वारा उन पद्धतियों को विनिर्दिष्ट करने के लिए जारी किया गया विवरण अभिप्रेत है जो प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र जारी करने में प्रयोग करता है ;

[2][(जक) "संचार युक्ति" से सैलफोन, वैयक्तिक अंकीय सहायता या दोनों का संयोजन या कोई ऐसी अन्य युक्ति अभिप्रेत है जिसका उपयोग कोई पाठ, वीडियो, आडियो या आकृति संसूचित करने, भेजने या पारेषित करने के लिए किया जाता है ;]

(झ) "कंप्यूटर" से ऐसी इलैक्ट्रानिक, चुम्बकीय, प्रकाशीय या अन्य द्रुत डाटा संसाधन युक्ति या प्रणाली अभिप्रेत है जो इलैक्ट्रानिक, चुम्बकीय या प्रकाशीय तरंगों के अभिचालनों द्वारा तर्कसंगत, अंकगणितीय और स्मृति फलन के रूप में कार्य करता है और इसके अंतर्गत सभी निवेश उत्पाद, प्रक्रमण, भंडारण, कंप्यूटर साफ्टवेयर या संचार सुविधाएं भी हैं जो किसी कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क में कंप्यूटर से संयोजित या संबंधित होती हैं ;

[3][(ञ) "कंप्यूटर नेटवर्क" से, –

(i) उपग्रह, सूक्ष्म तरंग, भौमिक लाइन, तार, बेतार या अन्य संचार मीडिया के उपयोग ; और

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 4 द्वारा अंतःस्थापित ।

[3] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 4 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(ii) दो या अधिक अंतःसंबद्ध कंप्यूटरों या संचार युक्ति से मिलकर बने टर्मिनलों या किसी कंप्लैक्स, चाहे अंत:संबंध निरंतर रखा जाता है या नहीं,

के माध्यम से एक या अधिक कंप्यूटरों या कंप्यूटर प्रणालियों या संचार युक्ति का अंतःसंबंध अभिप्रेत है ;]

(ट) "कंप्यूटर साधन" से कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली, कंप्यूटर नेटवर्क, डाटा, कंप्यूटर डाटा संचय या साफ्टवेयर अभिप्रेत है ;

(ठ) "कंप्यूटर प्रणाली" से, निवेश और निर्गम सहायक युक्तियों सहित और ऐसे कैलकुलेटरों को छोड़कर, जो क्रमादेश्य नहीं हैं और जो बाह्य फाइलों के साथ संयोजन में उपयोग में नहीं आ सकते, ऐसी युक्ति या युक्तियों का संग्रह अभिप्रेत है जिसमें कंप्यूटर प्रोग्राम, इलैक्ट्रानिक अनुदेश, निवेश डाटा और निर्गम डाटा भरे गए हैं, जो तर्क, अंकगणितीय, डाटा भंडारण और पुनः प्राप्ति, संचार नियंत्रण और अन्य कृत्य करती है ;

(ड) "नियंत्रक" से धारा 17 की उपधारा (1) के अधीन नियुक्त प्रमाणकर्ता प्राधिकारियों का नियंत्रक अभिप्रेत है ;

(ढ) "साइबर अपील अधिकरण" से धारा 48 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित साइबर [1]*** अपील अधिकरण अभिप्रेत है ;

[2][(ढक) "साइबर कैफे" से ऐसी कोई सुविधा अभिप्रेत है, जहां से किसी व्यक्ति द्वारा, जनता को कारबार के साधारण अनुक्रम में इंटरनेट तक पहुंच प्रस्थापित की जाती है ;

(ढख) "साइबर सुरक्षा" से सूचना, उपस्कर, युक्तियों, कंप्यूटर, कंप्यूटर संसाधन, संचार युक्ति और उनमें भंडारित सूचना को अप्राधिकृत पहुंच, उपयोग, प्रकटन, विच्छिन्न, उपान्तरण या नाश से संरक्षित करना अभिप्रेत है ;]

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 4 द्वारा लोप किया गया ।

[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 4 द्वारा अंत:स्थापित ।

(ण) "डाटा" से सूचना, जानकारी, तथ्यों, संकल्पनाओं या अनुदेशों का निरूपण अभिप्रेत है जिन्हें एक निश्चित रीति से तैयार किया जा रहा है या तैयार किया गया है और जो कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क में संसाधित किए जाने के लिए आशयित है, संसाधित किया जा रहा है या संसाधित किया गया है और जो किसी रूप में (जिसके अंतर्गत कंप्यूटर प्रिन्टआउट, चुम्बकीय या प्रकाशीय भंडारण मीडिया, छिद्रित कार्ड, छिद्रित टेप हैं) या कंप्यूटर की स्मृति में आंतरिक रूप से भंडारित हो सकता है ;

(त) "अंकीय चिह्नक" से किसी उपयोगकर्ता द्वारा धारा 3 के उपबंध के अनुसार किसी इलैक्ट्रानिक पद्धति या प्रक्रिया द्वारा किसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख का अधिप्रमाणन अभिप्रेत है ;

(थ) "अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र" से धारा 35 की उपधारा (4) के अधीन जारी किया गया अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र अभिप्रेत है ;

(द) सूचना के संदर्भ में, "इलैक्ट्रानिक रूप" से किसी मीडिया, चुम्बकीय, प्रकाशीय, कंप्यूटर स्मृति, माइक्रोफिल्म, कंप्यूटर उत्पादित सूक्ष्मिका या समरूप युक्ति में उत्पादित, प्रेषित, प्राप्त या भंडारित कोई सूचना अभिप्रेत है ;

(ध) "इलैक्ट्रानिक राजपत्र" से इलैक्ट्रानिक रूप में प्रकाशित राजपत्र अभिप्रेत है ;

(न) "इलैक्ट्रानिक अभिलेख" से किसी इलैक्ट्रानिक रूप या माइक्रोफिल्म या कंप्यूटर उत्पादित सूक्ष्मिका में डाटा, अभिलेख या उत्पादित डाटा, भंडारित, प्राप्त या प्रेषित प्रतिबिंब या ध्वनि अभिप्रेत है ;

[1][(नक) "इलैक्ट्रानिक चिह्नक" से किसी उपयोगकर्ता द्वारा दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट इलैक्ट्रानिक तकनीक के माध्यम से

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 4 द्वारा अंत:स्थापित ।

किसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख का अधिप्रमाणन अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत अंकीय चिह्नक भी है ;

(नख) "इलैक्ट्रानिक चिह्नक प्रमाणपत्र" से धारा 35 के अधीन जारी किया गया इलैक्ट्रानिक चिह्नक प्रमाणपत्र अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र भी है ;]

(प) किसी कंप्यूटर के संबंध में, "फलन" के अंतर्गत किसी कंप्यूटर से अथवा उसमें तर्क, नियंत्रण, अंकगणितीय प्रक्रम, विलोप, भंडारण और पुनः प्राप्ति तथा संचार या दूरसंचार भी आता है ;

[1][(पक) "भारतीय कंप्यूटर आपात मोचन दल" से धारा 70ख की उपधारा (1) के अधीन स्थापित अभिकरण अभिप्रेत है ;]

(फ) "सूचना" के अंतर्गत [2][डाटा, संदेश, पाठ,] प्रतिबिंब, ध्वनि, वाणी, कोड, कंप्यूटर कार्यक्रम, साफ्टवेयर और डाटा संचय या माइक्रोफिल्म या कंप्यूटर उत्पादित सूक्ष्मिका भी आती है ;

[2][(ब) किसी विशिष्ट इलैक्ट्रानिक अभिलेख के संबंध में "मध्यवर्ती" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो किसी अन्य व्यक्ति की ओर से उस अभिलेख को प्राप्त करता है, भंडारित करता है या पारेषित करता है या उस अभिलेख के संबंध में कोई सेवा प्रदान करता है और उसके अंतर्गत दूरसंचार सेवा प्रदाता, नेटवर्क सेवा प्रदाता, इंटरनेट सेवा प्रदाता, वैब होस्टिंग सेवा प्रदाता, सर्च इंजन, आन लाइन पेमेंट साइट, आन लाइन ऑक्सन साइट, आन लाइन विपणन स्थान और साइबर कैफे भी हैं ;]

(भ) असममित गूढ़ प्रणाली में, "कुंजी युग्म" से, प्राइवेट कुंजी और उसकी अंकगणितीय रूप से संबंधित लोक कुंजी अभिप्रेत है जो इस प्रकार संबंधित है कि लोक कुंजी उस अंकीय चिह्नक को सत्यापित कर सकती है जो प्राइवेट कुंजी द्वारा सृजित किया गया

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 4 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 4 द्वारा प्रतिस्थापित ।

है ;

(म) "विधि" के अन्तर्गत संसद् या राज्य विधान-मंडल का कोई अधिनियम, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश, अनुच्छेद 240 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए विनियम, संविधान के अनुच्छेद 357 के खंड (1) के उपखंड (क) के अधीन राष्ट्रपति के अधिनियमों के रूप में अधिनियमित विधेयक आते हैं और इनके अंतर्गत उनके अधीन बनाए गए नियम, विनियम, उपविधियां और जारी किए गए आदेश भी हैं ;

(य) "अनुज्ञप्ति" से धारा 24 के अधीन किसी प्रमाणकर्ता प्राधिकारी को अनुदत्त अनुज्ञप्ति अभिप्रेत है ;

(यक) "प्रवर्तक" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो किसी इलैक्ट्रानिक संदेश को भेजता है, उसका उत्पादन, भंडारण करता है या किसी अन्य व्यक्ति को पारेषित करता है अथवा किसी इलैक्ट्रानिक संदेश को भिजवाता है, उसका उत्पादन, भंडारण कराता है या किसी अन्य व्यक्ति को पारेषित कराता है, किन्तु इसके अंतर्गत कोई मध्यवर्ती नहीं है ;

(यख) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(यग) "प्राइवेट कुंजी" से कुंजी युग्म की वह कुंजी अभिप्रेत है जो अंकीय चिह्नक सृजित करने के लिए प्रयोग की जाती है ;

(यघ) "लोक कुंजी" से कुंजी युग्म की वह कुंजी अभिप्रेत है जो अंकीय चिह्नक को सत्यापित करने के लिए प्रयोग की जाती है और अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में सूचीबद्ध है ;

(यङ) "सुरक्षित प्रणाली" से ऐसे कंप्यूटर हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर और प्रक्रियाएं अभिप्रेत हैं, जो –

(क) अप्राधिकृत प्रवेश और दुरुपयोग से युक्तियुक्त रूप से सुरक्षित है ;

(ख) विश्वसनीयता और सही संचालन का युक्तियुक्त स्तर उपबंधित करती है ;

(ग) आशयित कृत्य करने के लिए युक्तियुक्त रूप से उपयुक्त है ;

(घ) साधारणतः स्वीकार्य सुरक्षा प्रक्रिया के अनुरूप है ;

(यच) "सुरक्षा प्रक्रिया" से धारा 16 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित सुरक्षा प्रक्रिया अभिप्रेत है ;

(यछ) "उपयोगकर्ता" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसके नाम से [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र जारी किया जाता है ;

(यज) अंकीय चिह्नक, इलैक्ट्रानिक अभिलेख या लोक कुंजी के संबंध में, "सत्यापित करना" से इसके व्याकरणिक रूपभेदों और सजातीय पदों सहित अभिप्रेत है यह अवधारण करना कि क्या –

(क) प्रारंभिक इलैक्ट्रानिक अभिलेख पर उपयोगकर्ता की लोक कुंजी के तद्नुरूपी प्राइवेट कुंजी का उपयोग करते हुए अंकीय चिह्नक लगाया गया था ;

(ख) प्रारंभिक इलैक्ट्रानिक अभिलेख, ऐसे इलैक्ट्रानिक अभिलेख पर अंकीय चिह्नक इस प्रकार लगाए जाने के समय से ही अक्षुण्ण रखे गए हैं या उसे उपांतरित किया गया है ।

(2) इस अधिनियम में किसी अधिनियमिति या उसके किसी उपबंध के प्रति किसी निर्देश का, उस क्षेत्र के संबंध में जिसमें ऐसी अधिनियमिति या ऐसा उपबंध प्रवृत्त नहीं है, यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस क्षेत्र में प्रवृत्त तत्स्थानी विधि या तत्स्थानी विधि से सुसंगत उपबंध, यदि कोई है, के प्रति निर्देश है ।

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

अध्याय 2

[1][अंकीय चिह्नक और इलैक्ट्रानिक चिह्नक]

3. इलैक्ट्रानिक अभिलेख का अधिप्रमाणीकरण – (1) इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कोई उपयोगकर्ता, किसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख को अपने अंकीय चिह्नक लगाकर अधिप्रमाणित कर सकेगा ।

(2) इलैक्ट्रानिक अभिलेख का अधिप्रमाणन असममित गूढ़ प्रणाली और द्रुतान्वेषण फलन का उपयोग करके किया जाएगा जो प्रारंभिक इलैक्ट्रानिक अभिलेख को किसी अन्य इलैक्ट्रानिक अभिलेख में आवृत्त और रूपान्तर करता है ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, "द्रुतान्वेषण फलन" से एल्गोरिथ्म मैपिंग या विटस की एक श्रृंखला का दूसरी श्रृंखला में रूपान्तरण अभिप्रेत है, जो कि सामान्यतः द्रुतान्वेषण परिणाम के नाम से ज्ञात सेट से छोटी हैं और ऐसी हैं जिसमें कोई इलैक्ट्रानिक अभिलेख हर समय वही द्रुतान्वेषण परिणाम उत्पन्न करता है जब उसके निवेश के रूप में उसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख के साथ एल्गोरिथ्म को निष्पादित किया जाता है तो वह अभिकलनीय रूप से निम्नलिखित के संबंध में असंभव हो जाता है –

(क) ऐल्गोरिथ्म द्वारा उत्पादित द्रुतान्वेषण परिणाम से मूल इलैक्ट्रानिक अभिलेख को व्युत्पन्न या पुनः संरचित करना ;

(ख) दो इलैक्ट्रानिक अभिलेखों का एल्गोरिथ्म का उपयोग करके वैसा ही द्रुतान्वेषण परिणाम उत्पादित करना ।

(3) कोई भी व्यक्ति, उपयोगकर्ता की लोक कुंजी का उपयोग करके इलैक्ट्रानिक अभिलेख को सत्यापित कर सकता है ।

(4) प्राइवेट कुंजी और लोक कुंजी उपयोगकर्ता के लिए अद्वितीय हैं और वे फलनकारी कुंजी युग्म का निर्माण करती हैं ।

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 5 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[1][**3क. इलैक्ट्रानिक चिह्नक** – (1) धारा 3 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कोई उपयोगकर्ता किसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख को, ऐसे इलैक्ट्रानिक चिह्नक या इलैक्ट्रानिक अधिप्रमाणन तकनीक द्वारा अधिप्रमाणित कर सकेगा, जो, –

(क) विश्वसनीय समझी जाती है ; और

(ख) दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट की जाए ।

(2) इस धारा के प्रयोजनों के लिए कोई इलैक्ट्रानिक चिह्नक या इलैक्ट्रानिक अधिप्रमाणन तकनीक विश्वसनीय समझी जाएगी, यदि, –

(क) चिह्नक सृजन डाटा या अधिप्रमाणन डाटा, उस संदर्भ में, जिसमें उनका उपयोग किया जाता है, यथास्थिति, हस्ताक्षरकर्ता या अधिप्रमाणनकर्ता के साथ जोड़े जाते हैं और न कि किसी अन्य व्यक्ति के साथ ;

(ख) चिह्नक सृजन डाटा या अधिप्रमाणन डाटा, चिह्नांकन के समय, यथास्थिति, हस्ताक्षरकर्ता या अधिप्रमाणनकर्ता के नियंत्रणाधीन थे और न कि किसी अन्य व्यक्ति के ;

(ग) ऐसा चिह्नक लगाने के पश्चात्, इलैक्ट्रानिक चिह्नक में किया गया कोई परिवर्तन पता लगाए जाने योग्य है ;

(घ) इलैक्ट्रानिक चिह्नक द्वारा अधिप्रमाणन के पश्चात् सूचना में किया गया कोई परिवर्तन पता लगाए जाने योग्य है ; और

(ङ) यह ऐसी अन्य शर्तों को पूरी करता हो, जो विहित की जाएं ।

(3) केन्द्रीय सरकार, इस बात का अभिनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए प्रक्रिया विहित कर सकेगी कि क्या इलैक्ट्रानिक चिह्नक उसी व्यक्ति का है जिसके द्वारा उसका चिह्नांकन किया जाना या अधिप्रमाणित किया जाना तात्पर्यित है ।

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 6 द्वारा अंत:स्थापित ।

(4) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, दूसरी अनुसूची में ऐसे चिह्नक को लगाने के लिए कोई इलैक्ट्रानिक चिह्नक या इलैक्ट्रानिक अधिप्रमाणन तकनीक या प्रक्रिया जोड़ सकेगी या उससे हटा सकेगी :

परंतु कोई इलैक्ट्रानिक चिह्नक या अधिप्रमाणन तकनीक दूसरी अनुसूची में तभी विनिर्दिष्ट की जाएगी, जब ऐसा चिह्नक या तकनीक विश्वसनीय हो ।

(5) उपधारा (4) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी ।]

अध्याय 3

इलैक्ट्रानिक नियमन

4. इलैक्ट्रानिक अभिलेखों की विधिमान्यता – जहां कोई विधि यह उपबंध करती है कि सूचना या कोई अन्य विषय लिखित या टंकित या मुद्रित रूप में होगा, वहां, ऐसी विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसी अपेक्षा पूर्ण कर दी गई समझी जाएगी, यदि ऐसी सूचना या विषय, –

(क) किसी इलैक्ट्रानिक रूप में दिया जाता है या उपलब्ध कराया जाता है ; और

(ख) इस प्रकार पहुंच योग्य है कि वह किसी पश्चात्वर्ती निर्देश के लिए उपयोग किए जाने योग्य है ।

5. [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नकों] की विधिमान्यता – जहां किसी विधि में यह उपबंध किया गया हो कि सूचना या कोई अन्य विषय, उस पर हस्ताक्षर करके अधिप्रमाणित किया जाए, या कोई दस्तावेज हस्ताक्षरित किया जाए अथवा उस पर किसी व्यक्ति के हस्ताक्षर हों, वहां ऐसी विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसी अपेक्षा पूर्ण कर दी गई

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

समझी जाएगी, यदि ऐसी सूचना या विषय, ऐसी रीति से जो केन्द्रीय सरकार द्‌वारा विहित की जाए, [1][इलैक्ट्रानिक चिह्‌नक] लगा कर अधिप्रमाणित किया गया हो ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए इसके व्याकरणिक रूपभेदों और सजातीय पदों के साथ "हस्ताक्षरित" से, किसी व्यक्ति के संदर्भ में, अभिप्रेत है किसी दस्तावेज पर अपने हस्तलिखित हस्ताक्षर करना या कोई चिह्‌न लगाना और "हस्ताक्षर" पद का तद्‌नुसार अर्थ लगाया जाएगा ।

6. सरकार और उसके अभिकरणों में इलैक्ट्रानिक अभिलेखों और [1][इलैक्ट्रानिक चिह्‌नकों] का प्रयोग – (1) जहां किसी विधि में, –

(क) समुचित सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी कार्यालय, प्राधिकरण, निकाय या अभिकरण में कोई प्ररूप, आवेदन या कोई अन्य दस्तावेज किसी विशिष्ट रीति से फाइल करने का ;

(ख) किसी अनुज्ञप्ति, अनुज्ञापन, मंजूरी या अनुमोदन, वह चाहे किसी भी नाम से ज्ञात हो किसी विशिष्ट रीति से जारी या मंजूर करने का ;

(ग) किसी विशिष्ट रीति से धन की प्राप्ति या संदाय का,

उपबंध है, वहां, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसी अपेक्षा पूर्ण कर दी गई समझी जाएगी, यदि, यथास्थिति, ऐसा फाइल किया जाना, जारी किया जाना, मंजूरी, प्राप्ति या संदाय, ऐसे इलैक्ट्रानिक रूप से, जो समुचित सरकार द्‌वारा विहित किया जाए, किया जाता है ।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए, समुचित सरकार, नियमों द्‌वारा निम्नलिखित विहित कर सकेगी –

(क) वह रीति जिससे और वह रूपविधान जिसमें ऐसे

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्‌वारा प्रतिस्थापित ।

इलैक्ट्रानिक अभिलेख फाइल, सृजित या जारी किए जाएंगे ;

(ख) खंड (क) के अधीन किसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख के फाइल, सृजन या जारी किए जाने के लिए किसी फीस या प्रभारों के संदाय की रीति या पद्धति ।

[1][**6क. सेवा प्रदाता द्वारा सेवाओं का परिदान** – (1) समुचित सरकार, इस अध्याय के प्रयोजनों के लिए और इलैक्ट्रानिक साधनों के माध्यम से, जनता को सेवाओं के दक्ष परिदान के लिए, आदेश द्वारा, किसी सेवा प्रदाता को कंप्यूटरीकृत सुविधाओं की स्थापना, अनुरक्षण और उन्नयन और ऐसी अन्य सेवाओं का अनुपालन करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगी, जो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, इस प्रकार प्राधिकृत सेवा प्रदाता के अंतर्गत ऐसा कोई व्यष्टि, प्राइवेट अभिकरण, प्राइवेट कंपनी, भागीदारी फर्म, एकल स्वत्वधारी फर्म या कोई ऐसा अन्य निकाय या अभिकरण भी है जिसे ऐसे सेवा सैक्टर को शासित करने वाली नीति के अनुसार इलैक्ट्रानिक साधनों के माध्यम से सेवाएं प्रस्थापित करने के लिए समुचित सरकार द्वारा अनुज्ञा दी गई है ।

(2) समुचित सरकार, उपधारा (1) के अधीन प्राधिकृत किसी सेवा प्रदाता को, ऐसे सेवा प्रभार, जो ऐसी सेवा का उपभोग करने वाले व्यक्ति से ऐसी सेवा प्रदान करने के प्रयोजन के लिए समुचित सरकार द्वारा विहित किए जाएं, संगृहीत, प्रतिधारित और विनियोजित करने के लिए भी प्राधिकृत कर सकेगी ।

(3) उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, समुचित सरकार, इस तथ्य के होते हुए भी कि इस अधिनियम, नियम, विनियम या अधिसूचना के अधीन ऐसा कोई अभिव्यक्त उपबंध

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 7 द्वारा अंतःस्थापित ।

नहीं है, जिसके अधीन सेवा प्रदाताओं द्वारा ई-सेवा प्रभारों का संग्रहण, प्रतिधारण और विनियोजन करने के लिए सेवा प्रदान की जाती है, इस धारा के अधीन सेवा प्रदाताओं को सेवा प्रभारों का संग्रहण, प्रतिधारण, विनियोजन करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगी ।

(4) समुचित सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, उन सेवा प्रभारों का मापमान विनिर्दिष्ट करेगी जो इस धारा के अधीन सेवा प्रदाताओं द्वारा प्रभारित और संगृहीत किए जा सकेंगे :

परंतु समुचित सरकार विभिन्न प्रकार की सेवाओं के लिए सेवा प्रभारों के विभिन्न मापमान विनिर्दिष्ट कर सकेगी ।]

7. इलैक्ट्रानिक अभिलेखों का प्रतिधारण – (1) जहां किसी विधि में यह उपबंध है कि दस्तावेज, अभिलेख या सूचना किसी विनिर्दिष्ट अवधि के लिए प्रतिधारित की जाए, वहां, ऐसी अपेक्षा पूर्ण कर दी गई समझी जाएगी यदि ऐसे दस्तावेज, अभिलेख या सूचना इलैक्ट्रानिक रूप में प्रतिधारित की जाती है, यदि –

(क) उसमें अंतर्विष्ट सूचना इस प्रकार पहुंच योग्य बनी रहती है कि पश्चात्वर्ती निर्देश के लिए उपयोग की जा सके ;

(ख) इलैक्ट्रानिक अभिलेख उसी रूपविधान में, जिसमें मूलतः उत्पादित, प्रेषित या प्राप्त किया गया था या उस रूपविधान में, जिसमें मूलतः उत्पादित, प्रेषित या प्राप्त की गई सूचना ठीक-ठीक निरूपित करने के लिए निर्देशित की जा सकती है, प्रतिधारित किया जाता है ;

(ग) वे ब्यौरे, जो ऐसे इलैक्ट्रानिक अभिलेख के उद्भव, गंतव्य, प्रेषण या प्राप्त की तारीख और समय के अभिज्ञान को सुकर बनाएंगे, इलैक्ट्रानिक अभिलेख में उपलब्ध हैं :

परंतु यह खंड किसी ऐसी सूचना को लागू नहीं होता है जो किसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख को केवल प्रेषित या प्राप्त करने में समर्थ बनाने के प्रयोजन के लिए स्वतः उत्पादित की जाती है ।

(2) इस धारा की कोई बात किसी ऐसी विधि को लागू नहीं होगी जिसमें दस्तावेजों, अभिलेखों या सूचना का इलैक्ट्रानिक अभिलेखों के रूप में प्रतिधारण के लिए अभिव्यक्त रूप से उपबंध है ।

[1][**7क. इलैक्ट्रानिक रूप में रखे गए दस्तावेजों, आदि की संपरीक्षा** – जहां तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में, दस्तावेजों, अभिलेखों या सूचना की संपरीक्षा का उपबंध है, वहां, वह उपबंध इलैक्ट्रानिक रूप में संसाधित और रखे गए दस्तावेजों, अभिलेखों या सूचना की संपरीक्षा के संबंध में भी लागू होगा ।]

8. इलैक्ट्रानिक राजपत्र में नियम, विनियम, आदि का प्रकाशन – जहां किसी विधि में यह उपबंध है कि कोई नियम, विनियम, आदेश, उपविधि, अधिसूचना या कोई अन्य विषय, राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा वहां ऐसी अपेक्षा पूर्ण कर दी गई समझी जाएगी यदि ऐसा नियम, विनियम, आदेश, उपविधि, अधिसूचना या कोई अन्य विषय राजपत्र या इलैक्ट्रानिक राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है :

परन्तु जहां राजपत्र या इलैक्ट्रानिक राजपत्र में कोई नियम, विनियम, आदेश, उपविधि, अधिसूचना या किसी अन्य सामग्री को प्रकाशित किया जाता है वहां वही प्रकाशन की तारीख, उस राजपत्र की तारीख समझी जाएगी, जिसको वह प्रथमतः किसी रूप में प्रकाशित हुआ था ।

9. धारा 6, धारा 7 और धारा 8 इस बात पर जोर देने का अधिकार प्रदान नहीं करती कि दस्तावेज इलैक्ट्रानिक रूप में स्वीकार किया जाए – धारा 6, धारा 7 और धारा 8 में अंतर्विष्ट कोई बात किसी व्यक्ति को इस बात पर जोर देने का अधिकार प्रदान नहीं करेगी कि केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के किसी मंत्रालय या विभाग अथवा किसी विधि द्वारा या उसके अधीन स्थापित या केन्द्रीय या राज्य सरकार द्वारा नियंत्रित या वित्तपोषित किसी प्राधिकरण या निकाय को कोई दस्तावेज इलैक्ट्रानिक अभिलेखों के रूप में स्वीकार, जारी, सृजित,

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 8 द्वारा अंतःस्थापित ।

प्रतिधारित, संरक्षित करना चाहिए या इलैक्ट्रानिक रूप में कोई धनीय संव्यवहार करना चाहिए ।

10. [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] से संबंधित नियम बनाने की केन्द्रीय सरकार की शक्ति – केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, नियमों द्‌वारा, निम्नलिखित विहित कर सकेगी, –

(क) [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] का प्रकार ;

(ख) वह रीति और रूपविधान जिसमें [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] लगाया जाएगा ;

(ग) वह रीति या प्रक्रिया जो [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] लगाने वाले व्यक्ति की पहचान को सुकर बनाती है ;

(घ) इलैक्ट्रानिक अभिलेखों या संदायों की यथोचित समग्रता, सुरक्षा और गोपनीयता सुनिश्चित करने के लिए नियंत्रण पद्धति और प्रक्रियाएं ; और

(ङ) कोई अन्य विषय, जो [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] को विधिक प्रभाव देने के लिए आवश्यक हो ।

[2][**10क. इलैक्ट्रानिक साधनों के माध्यम से की गई संविदाओं की विधिमान्यता** – जहां किसी संविदा को तैयार करने में, यथास्थिति, प्रस्थापनाओं की संसूचना, प्रस्थापनाओं की स्वीकृति, प्रस्थापनाओं का प्रतिसंहरण और स्वीकृतियां, इलैक्ट्रानिक रूप में या किसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख के साधनों द्‌वारा, अभिव्यक्त की जाती है वहां ऐसी संविदा केवल इस आधार पर कि ऐसा इलैक्ट्रानिक रूप या साधन उस प्रयोजन के लिए उपयोग किया गया था, अप्रवर्तनीय नहीं समझी जाएगी ।]

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्‌वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 9 द्‌वारा अंतःस्थापित ।

अध्याय 4

इलैक्ट्रानिक अभिलेखों का अधिकार, अभिस्वीकृति और प्रेषण

11. इलैक्ट्रानिक अभिलेखों का अधिकार – किसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख का अधिकार प्रवर्तक को प्राप्त होगा, –

(क) यदि वह स्वयं प्रवर्तक द्वारा ;

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा, जिसे उस इलैक्ट्रानिक अभिलेख की बाबत प्रवर्तक की ओर से कार्य करने का प्राधिकार था ; या

(ग) स्वत: प्रचालित किए जाने के लिए प्रवर्तक द्वारा या उसकी ओर से कार्यक्रमित किसी सूचना प्रणाली द्वारा भेजा गया था ।

12. प्राप्ति की अभिस्वीकृति – (1) [1][जहां प्रवर्तक ने यह अनुबंधित नहीं किया है] कि इलैक्ट्रानिक अभिलेख की प्राप्ति की अभिस्वीकृति किसी विशिष्ट रूप में या किसी विशिष्ट पद्धति द्वारा दी जाए, वहां अभिस्वीकृति, –

(क) प्रेषिती द्वारा स्वचालित या अन्यथा किसी संसूचना द्वारा ; या

(ख) प्रेषिती के किसी आचरण द्वारा, जो प्रवर्तक को यह इंगित करने के लिए पर्याप्त है कि इलैक्ट्रानिक अभिलेख प्राप्त हो गया है,

दी जा सकेगी ।

(2) जहां प्रवर्तक ने यह नियत किया है कि इलैक्ट्रानिक अभिलेख, उसके द्वारा ऐसे इलैक्ट्रानिक अभिलेख की अभिस्वीकृति के प्राप्त होने पर ही आबद्धकर होगा, वहां जब तक अभिस्वीकृति इस प्रकार प्राप्त नहीं

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 10 द्वारा प्रतिस्थापित ।

हो जाती है, ऐसा समझा जाएगा कि इलैक्ट्रानिक अभिलेख प्रवर्तक द्‌वारा कभी भेजा ही नहीं गया था ।

(3) जहां प्रवर्तक ने यह नियत नहीं किया है कि इलैक्ट्रानिक अभिलेख, ऐसी अभिस्वीकृति प्राप्त होने पर ही आबद्धकर होगा और प्रवर्तक द्‌वारा विनिर्दिष्ट या तय किए गए समय के भीतर या यदि कोई समय विनिर्दिष्ट या तय नहीं किया गया है तो उचित समय के भीतर, अभिस्वीकृति प्राप्त नहीं की गई है वहां प्रवर्तक, प्रेषिती को यह कथन करते हुए कि उसके द्‌वारा अभिस्वीकृति प्राप्त नहीं की गई है और ऐसा उचित समय विनिर्दिष्ट करते हुए, जिस तक अभिस्वीकृति उसके द्‌वारा प्राप्त कर ली जानी चाहिए, नोटिस दे सकेगा और यदि पूर्वोक्त समय-सीमा के भीतर कोई अभिस्वीकृति प्राप्त नहीं होती है तो वह प्रेषिती को नोटिस देने के पश्चात्, इलैक्ट्रानिक अभिलेख के बारे में इस प्रकार समझ सकेगा मानो वह कभी भेजा ही न गया हो ।

13. इलैक्ट्रानिक अभिलेख के प्रेषण और प्राप्ति का समय और स्थान – (1) प्रवर्तक और प्रेषिती के बीच जैसा अन्यथा तय पाया गया है उसके सिवाय, किसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख का प्रेषण उस समय होता है जब वह प्रवर्तक के नियंत्रण से बाहर किसी कम्प्यूटर साधन में डाला जाता है ।

(2) प्रवर्तक और प्रेषिती के बीच जैसा अन्यथा तय पाया गया है उसके सिवाय, किसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख की प्राप्ति का समय निम्नलिखित रूप में अवधारित किया जाएगा, अर्थात् :-

(क) यदि प्रेषिती ने इलैक्ट्रानिक अभिलेखों को प्राप्त करने के प्रयोजन के लिए कोई कम्प्यूटर साधन अभिहित कर लिया है, –

(i) तो प्राप्ति उस समय हो जाती है जब इलैक्ट्रानिक अभिलेख अभिहित कम्प्यूटर साधन में डाला जाता है, या

(ii) यदि इलैक्ट्रानिक अभिलेख, प्रेषिती के ऐसे कम्प्यूटर

साधन में भेजा जाता है जो अभिहित कम्प्यूटर साधन नहीं है तब प्राप्ति उस समय हो जाती है जब इलैक्ट्रानिक अभिलेख प्रेषिती द्वारा पुन: प्राप्त कर लिया जाता है ;

(ख) यदि प्रेषिती ने विनिर्दिष्ट समयों के साथ-साथ, यदि कोई हो, कोई कम्प्यूटर साधन अभिहित नहीं किया है तो प्राप्ति तब होती है जब इलैक्ट्रानिक अभिलेख, प्रेषिती के कम्प्यूटर साधन में डाला जाता है ।

(3) प्रवर्तक और प्रेषिती के बीच जैसा अन्यथा तय पाया गया है उसके सिवाय, कोई इलैक्ट्रानिक अभिलेख उस स्थान पर प्रेषित कर दिया गया समझा जाता है जहां प्रवर्तक का अपना कारबार का स्थान है और उस स्थान पर प्राप्त हो गया समझा जाता है जहां प्रेषिती का अपना कारबार का स्थान है ।

(4) उपधारा (2) के उपबंध इस बात के होते हुए भी लागू होंगे कि वह स्थान जहां कम्प्यूटर साधन अवस्थित है, उस स्थान से भिन्न हो सकता है जहां इलैक्ट्रानिक अभिलेख उपधारा (3) के अधीन प्राप्त कर लिया गया समझा जाता है ।

(5) इस धारा के प्रयोजनों के लिए –

(क) यदि प्रवर्तक या प्रेषिती के एक से अधिक कारबार के स्थान हैं तो कारबार का प्रधान स्थान, कारबार का स्थान होगा ;

(ख) यदि प्रवर्तक या प्रेषिती के पास कारबार का स्थान नहीं है तो उसके निवास का प्रायिक स्थान कारबार का स्थान समझा जाएगा ;

(ग) किसी निगमित निकाय के संबंध में "निवास का प्रायिक स्थान" से वह स्थान अभिप्रेत है जहां वह रजिस्ट्रीकृत है ।

अध्याय 5

सुरक्षित इलैक्ट्रानिक अभिलेख और सुरक्षित [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक]

14. सुरक्षित इलैक्ट्रानिक अभिलेख – जहां किसी इलैक्ट्रानिक अभिलेख को, समय के किसी विनिर्दिष्ट क्षण पर सुरक्षा प्रक्रिया लागू की गई है वहां ऐसा अभिलेख, समय के ऐसे क्षण से सत्यापन के समय तक सुरक्षित इलैक्ट्रानिक अभिलेख समझा जाएगा ।

[2][**15. सुरक्षित इलैक्ट्रानिक चिह्नक** – कोई इलैक्ट्रानिक चिह्नक एक सुरक्षित इलैक्ट्रानिक चिह्नक समझा जाएगा, यदि –

(i) चिह्नक सृजन डाटा, चिह्नक लगाने के समय, हस्ताक्षरकर्ता के अनन्य नियंत्रणाधीन था और न कि किसी अन्य व्यक्ति के ; और

(ii) चिह्नक सृजन डाटा, ऐसी अनन्य रीति में भंडारित किया गया और लगाया गया था, जो विहित की जाए ।

स्पष्टीकरण – अंकीय चिह्नक की दशा में, "चिह्नक सृजन डाटा" से उपयोगकर्ता की प्राइवेट कुंजी अभिप्रेत है ।

16. सुरक्षा प्रक्रियाएं और पद्धतियां – केन्द्रीय सरकार, धारा 14 और धारा 15 के प्रयोजनों के लिए, सुरक्षा प्रक्रियाएं और पद्धतियां विहित कर सकेगी :

परंतु ऐसी सुरक्षा प्रक्रियाओं और पद्धतियों को विहित करते समय केन्द्रीय सरकार, वाणिज्यिक परिस्थितियों, संव्यवहारों की प्रकृति और ऐसी अन्य संबंधित बातों का ध्यान रखेगी, जो वह समुचित समझे ।]

अध्याय 6

प्रमाणकर्ता प्राधिकारियों का विनियमन

17. नियंत्रक और अन्य अधिकारियों की नियुक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों के

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 11 द्वारा प्रतिस्थापित ।

लिए प्रमाणकर्ता प्राधिकारियों का एक नियंत्रक नियुक्त कर सकेगी और उसी या पश्चात्वर्ती अधिसूचना द्वारा उप नियंत्रक, [1][सहायक नियंत्रक, अन्य अधिकारी और कर्मचारी] भी उतनी संख्या में नियुक्त कर सकेगी जितनी वह ठीक समझे ।

(2) नियंत्रक, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का केन्द्रीय सरकार के साधारण नियंत्रण और निदेशों के अधीन रहते हुए निर्वहन करेगा ।

(3) उप नियंत्रक और सहायक नियंत्रक, नियंत्रक द्वारा उन्हें समनुदेशित कृत्यों का निर्वहन, नियंत्रक के साधारण अधीक्षण और नियंत्रक के अधीन करेंगे ।

(4) नियंत्रक, उप नियंत्रकों, [1][और सहायक नियंत्रकों, अन्य अधिकारी और कर्मचारियों] की अर्हताएं, अनुभव और सेवा के निबंधन तथा शर्तें वे होंगी जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

(5) नियंत्रक कार्यालय का प्रधान कार्यालय और शाखा कार्यालय ऐसे स्थानों पर होंगे, जो केन्द्रीय सरकार विनिर्दिष्ट करे और इनकी स्थापना ऐसे स्थानों पर हो सकेगी, जो केन्द्रीय सरकार ठीक समझे ।

(6) नियंत्रक कार्यालय की एक मोहर होगी ।

18. नियंत्रक के कृत्य – नियंत्रक, निम्नलिखित सभी या किन्हीं कृत्यों का निष्पादन कर सकेगा, अर्थात् :-

(क) प्रमाणकर्ता प्राधिकारियों के क्रियाकलापों का पर्यवेक्षण करना ;

(ख) प्रमाणकर्ता प्राधिकारियों की लोक कुंजियों को प्रमाणित करना ;

(ग) प्रमाणकर्ता प्राधिकारियों द्वारा बनाए रखे जाने वाले मानक अधिकथित करना ;

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 12 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(घ) ऐसी अर्हताएं और अनुभव विनिर्दिष्ट करना जो प्रमाणकर्ता प्राधिकारी के कर्मचारियों के पास होनी चाहिए ;

(ङ) ऐसी शर्तें विनिर्दिष्ट करना जिनके अधीन प्रमाणकर्ता प्राधिकारी अपना कार्य करेगा ;

(च) लिखित, मुद्रित या दृश्य सामग्री और विज्ञापनों की अन्तर्वस्तु विनिर्दिष्ट करना, जिसके [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र और लोक कुंजी की बाबत वितरण या उपयोग किया जा सके ;

(छ) किसी [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र और कुंजी का रूप और अन्तर्वस्तु विनिर्दिष्ट करना ;

(ज) वह प्ररूप और रीति विनिर्दिष्ट करना, जिसमें प्रमाणकर्ता प्राधिकारियों द्वारा लेखे रखे जाएंगे ;

(झ) उन निबंधनों और शर्तों को विनिर्दिष्ट करना, जिनके अधीन लेखा-परीक्षकों की नियुक्ति की जा सकेगी और उनको पारिश्रमिक संदत्त किया जा सकेगा ;

(ञ) प्रमाणकर्ता प्राधिकारी द्वारा, अकेले या अन्य प्रमाणकर्ता प्राधिकारियों के साथ संयुक्त रूप से किसी इलैक्ट्रानिक प्रणाली के स्थापन और ऐसी प्रणाली के विनियमन को सुकर बनाना ;

(ट) वह रीति विनिर्दिष्ट करना, जिसमें प्रमाणकर्ता प्राधिकारी उपयोगकर्ताओं के साथ व्यवहार करेंगे ;

(ठ) प्रमाणकर्ता प्राधिकारी और उनके उपयोगकर्ताओं के बीच हितों के किसी टकराव का समाधान करना ;

(ड) प्रमाणकर्ता प्राधिकारियों के कर्तव्यों को अधिकथित करना ;

(ढ) ऐसा डाटा संचय रखना, जिसमें प्रत्येक प्रमाणकर्ता प्राधिकारी का प्रकटन अभिलेख हो, जिसमें ऐसी विशिष्टियां

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

अंतर्विष्ट हों, जो विनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट की जाएं और जो जनता की पहुंच में हों ।

19. विदेशी प्रमाणकर्ता प्राधिकारियों की मान्यता – (1) नियंत्रक, ऐसी शर्तों और निबंधनों के अधीन रहते हुए, जो विनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं, केन्द्रीय सरकार के पूर्वानुमोदन से और राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, किसी विदेशी प्रमाणकर्ता प्राधिकारी को इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए प्रमाणकर्ता प्राधिकारी के रूप में मान्यता दे सकेगा ।

(2) जहां, किसी प्रमाणकर्ता प्राधिकारी को उपधारा (1) के अधीन मान्यता दी जाती है, वहां ऐसे प्रमाणकर्ता प्राधिकारी द्वारा जारी किया गया [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए विधिमान्य होगा ।

(3) यदि नियंत्रक का यह समाधान हो जाता है कि किसी प्रमाणकर्ता प्राधिकारी ने ऐसी शर्तों और निर्बन्धनों में से किसी का, जिनके अध्यधीन उसे उपधारा (1) के अधीन मान्यता प्रदान की गई थी, उल्लंघन किया है तो वह उन कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसी मान्यता को प्रतिसंहृत कर सकेगा ।

[2]20. * * * * *

21. [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र जारी करने के लिए अनुज्ञप्ति – (1) उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कोई व्यक्ति, [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र जारी करने की अनुज्ञप्ति के लिए नियंत्रक को आवेदन कर सकेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई अनुज्ञप्ति तब तक जारी नहीं की जाएगी जब तक कि आवेदक, अर्हता, विशेषज्ञता, जनशक्ति, वित्तीय संसाधन और अन्य अवसंरचनात्मक सुविधाओं की बाबत ऐसी अपेक्षाएं पूरी न करता हो, जो ऐसे [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्रों को जारी

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 13 द्वारा लोप किया गया ।

करने के लिए आवश्यक हों, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

(3) इस धारा के अधीन अनुदत्त कोई अनुज्ञप्ति, –

(क) ऐसी अवधि के लिए विधिमान्य होगी, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए ;

(ख) अन्तरणीय या वंशागत नहीं होगी ;

(ग) ऐसे निबंधनों और शर्तों के अधीन होगी, जो विनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट की जाएं ।

22. अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन – (1) अनुज्ञप्ति जारी करने के लिए प्रत्येक आवेदन ऐसे प्ररूप में होगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किया जाए ।

(2) अनुज्ञप्ति जारी करने के लिए प्रत्येक आवेदन के साथ, निम्नलिखित संलग्न होंगे –

(क) प्रमाणन पद्धति विवरण ;

(ख) आवेदक की पहचान करने की बाबत विवरण, जिसमें प्रक्रियाएं भी सम्मिलित हैं ;

(ग) पच्चीस हजार रुपए से अनधिक की ऐसी फीस का संदाय, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए ;

(घ) ऐसे अन्य दस्तावेज, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

23. अनुज्ञप्ति का नवीकरण – किसी अनुज्ञप्ति के नवीकरण के लिए कोई आवेदन, –

(क) ऐसे प्ररूप में ;

(ख) ऐसी फीस सहित होगा, जो पांच हजार रुपए से अधिक नहीं होगी,

जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए और अनुज्ञप्ति की

विधिमान्यता की अवधि के अवसान से पैंतालीस दिन से अन्यून अवधि से पूर्व किया जाएगा ।

24. अनुज्ञप्ति प्रदान करने या उसे नामंजूर करने के लिए प्रक्रिया – नियंत्रक, धारा 21 की उपधारा (1) के अधीन आवेदन की प्राप्ति पर आवेदन के साथ संलग्न दस्तावेजों और ऐसी अन्य बातों पर, जिन्हें वह ठीक समझे, विचार करने के पश्चात्, अनुज्ञप्ति अनुदत्त कर सकेगा या आवेदन को नामंजूर कर सकेगा :

परन्तु इस धारा के अधीन कोई भी आवेदन तब तक नामंजूर नहीं किया जाएगा जब तक कि आवेदक को अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने का युक्तियुक्त अवसर न दे दिया गया हो ।

25. अनुज्ञप्ति का निलंबन – (1) नियंत्रक, यदि उसकी ऐसी जांच करने के पश्चात्, जिसे वह ठीक समझे, यह समाधान हो जाता है कि प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, –

(क) ने अनुज्ञप्ति जारी करने या उसके नवीकरण के लिए आवेदन में या उसके संबंध में ऐसा कोई कथन किया है जो तात्त्विक विशिष्टियों के बारे में गलत है या मिथ्या है ;

(ख) उन निबंधनों और शर्तों का, जिनके अध्यधीन अनुज्ञप्ति अनुदत्त की गई थी, पालन करने में असफल रहा है ;

[1][(ग) धारा 30 में विनिर्दिष्ट प्रक्रियाओं और मानकों को बनाए रखने में असफल रहा है ;]

(घ) ने इस अधिनियम, उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों या किए गए आदेश के किन्हीं उपबंधों का उल्लंघन किया है,

तो अनुज्ञप्ति को प्रतिसंहृत कर सकेगा :

---

[1] का. आ. 1015 (अ.), तारीख 19-9-2002 द्वारा प्रतिस्थापित ।

परन्तु कोई भी अनुज्ञप्ति तब तक प्रतिसंहृत नहीं की जाएगी जब तक कि प्रमाणकर्ता प्राधिकारी को प्रस्तावित प्रतिसंहरण के विरुद्ध कारण दर्शित करने का युक्तियुक्त अवसर न दे दिया गया हो ।

(2) नियंत्रक, यदि उसके पास यह विश्वास करने का युक्तियुक्त हेतुक है कि उपधारा (1) के अधीन अनुज्ञप्ति को प्रतिसंहृत करने के लिए कोई आधार है, आदेश द्वारा, उसके, द्वारा आदेशित किसी जांच के पूरा होने तक ऐसी अनुज्ञप्ति को निलंबित कर सकेगा :

परन्तु कोई भी अनुज्ञप्ति दस दिन से अनधिक की अवधि के लिए तब तक निलंबित नहीं की जाएगी जब तक कि प्रमाणकर्ता प्राधिकारी को, प्रस्तावित निलम्बन के विरुद्ध कारण बताने का उचित अवसर न दे दिया गया हो ।

(3) ऐसा कोई प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, जिसकी अनुज्ञप्ति निलंबित कर दी गई है, ऐसे निलबंन के दौरान कोई [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र जारी नहीं करेगा ।

26. अनुज्ञप्ति के निलंबन या प्रतिसंहरण की सूचना – (1) जहां किसी प्रमाणकर्ता प्राधिकारी की कोई अनुज्ञप्ति निलंबित या प्रतिसंहृत कर दी गई है वहां नियंत्रक, यथास्थिति, ऐसे निलंबन या प्रतिसंहरण की एक सूचना, उसके द्वारा रखे जाने वाले डाटा-संचय में प्रकाशित करेगा ।

(2) जहां एक या अधिक निधान विनिर्दिष्ट किए गए हैं वहां नियंत्रक, यथास्थिति, ऐसे निलंबन या प्रतिसंहरण की सूचना, ऐसे सभी निधानों में प्रकाशित करेगा :

परन्तु, यथास्थिति, ऐसे निलंबन या प्रतिसंहरण की सूचना से युक्त डाटा-संचय ऐसी वेबसाइट के माध्यम से उपलब्ध कराया जाएगा, जो दिन-रात पहुंच में होगी :

परन्तु यह और कि यदि नियंत्रक, आवश्यक समझे तो वह, ऐसे इलैक्ट्रानिक या अन्य मीडिया में, जिसे वह उपयुक्त समझे, डाटा-संचय

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

की अन्तर्वस्तु को प्रचारित कर सकेगा ।

27. प्रत्यायोजन की शक्ति – नियंत्रक, इस अध्याय के अधीन नियंत्रक की किन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने के लिए उप नियंत्रक, सहायक नियंत्रक या किसी अधिकारी को लिखित रूप में प्राधिकृत कर सकेगा ।

28. उल्लंघनों का अन्वेषण करने की शक्ति – (1) नियंत्रक या उसके द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत कोई अधिकारी, इस अधिनियम, तद्धीन बनाए गए नियमों या विनियमों के उपबंधों के किसी भी उल्लंघन का अन्वेषण करेगा ।

(2) नियंत्रक या उसके द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत कोई अधिकारी, वैसी ही शक्तियों का प्रयोग करेगा जो आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43) के अध्याय 13 के अधीन आय-कर प्राधिकारियों को प्रदत्त हैं और ऐसी शक्तियों का प्रयोग उस अधिनियम के अधीन अधिकथित सीमाओं के अधीन रहते हुए करेगा ।

29. कंप्यूटरों और डाटा तक पहुंच – (1) धारा 69 की उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, नियंत्रक या उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति के पास, यदि यह संदेह करने का उचित कारण है कि [1][इस अध्याय के उपबंधों का कोई उल्लंघन किया गया है,] तो उसे किसी कंप्यूटर प्रणाली, किसी साधित्र, डाटा या ऐसी प्रणाली से संबंधित किसी अन्य सामग्री तक, ऐसी कंप्यूटर प्रणाली में उपलब्ध या अन्तर्विष्ट कोई सूचना या डाटा अभिप्राप्त करने के लिए, उसमें तलाशी करने या करवाने के प्रयोजन के लिए पहुंच होगी ।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए नियंत्रक या उसके द्वारा प्राधिकृत कोई व्यक्ति, ऐसे किसी व्यक्ति को, जिसके भारसाधन में कंप्यूटर प्रणाली, डाटा साधित्र या सामग्री है या वह उसके प्रचालन से अन्यथा संबंधित है, ऐसी युक्तियुक्त तकनीकी और अन्य सहायता, जिसे

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 14 द्वारा प्रतिस्थापित ।

वह आवश्यक समझे, प्रदान करने के लिए, आदेश द्‌वारा निदेश दे सकेगा ।

30. प्रमाणकर्ता प्राधिकारी द्‌वारा कतिपय प्रक्रियाओं का अनुसरण किया जाना – प्रत्येक प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, –

(क) हार्डवेयर, साफ्टवेयर और ऐसी प्रक्रियाओं का उपयोग करेगा, जो अतिक्रमण और दुरुपयोग से सुरक्षित हैं ;

(ख) अपनी सेवाओं में विश्वसनीयता का युक्तियुक्त स्तर उपलब्ध कराएगा, जो आशयित कृत्यों के निर्वहन के लिए युक्तियुक्त रूप से उपयुक्त हैं ;

(ग) यह सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षा प्रक्रियाओं का पालन करेगा, जिससे कि [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नकों] की गोपनीयता और एकान्तता सुनिश्चित हो सके ; [2]***

[3][(गक) इस अधिनियम के अधीन जारी किए गए सभी इलैक्ट्रानिक चिह्नक प्रमाणपत्रों का संग्रह होगा ;

(गख) अपनी पद्धतियों, इलैक्ट्रानिक चिह्नक प्रमाणपत्रों और ऐसे प्रमाणपत्रों की वर्तमान प्रास्थिति की बाबत सूचना का प्रकाशन करेगा ; और]

(घ) ऐसे अन्य मानकों का पालन करेगा, जो विनियमों द्‌वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं ।

31. प्रमाणकर्ता प्राधिकारी अधिनियम आदि के अनुपालन को सुनिश्चित करेगा – प्रत्येक प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, यह सुनिश्चित करेगा कि उसके द्‌वारा नियोजित या अन्यथा नियुक्त प्रत्येक व्यक्ति, अपने नियोजन या नियुक्ति के दौरान इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों, विनियमों और किए गए आदेशों के उपबंधों का पालन करता है ।

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्‌वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 15 द्‌वारा लोप किया गया ।

[3] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 15 द्‌वारा अंत:स्थापित ।

32. अनुज्ञप्ति का संप्रदर्शन – प्रत्येक प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, अपनी अनुज्ञप्ति को उस परिसर के उस सहजदृश्य स्थान पर, जिसमें वह अपना कारबार करता है, संप्रदर्शित करेगा ।

33. अनुज्ञप्ति का अभ्यर्पण – (1) ऐसा प्रत्येक प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, जिसकी अनुज्ञप्ति निलंबित या प्रतिसंहृत कर दी गई है, ऐसे निलंबन या प्रतिसंहरण के ठीक पश्चात् नियंत्रक को अनुज्ञप्ति अभ्यर्पित करेगा ।

(2) जहां कोई प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, उपधारा (1) के अधीन किसी अनुज्ञप्ति का अभ्यर्पण करने में असफल रहेगा वहां वह व्यक्ति, जिसके पक्ष में अनुज्ञप्ति जारी की गई है, अपराध का दोषी होगा और कारावास से, जो छह मास तक हो सकेगा या जुर्माने से, जो दस हजार रुपए तक हो सकेगा या दोनों से दंडित किया जाएगा ।

34. प्रकटीकरण – (1) प्रत्येक प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, विनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट रीति से, –

(क) अपने [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र को प्रकट करेगा, [2]*** ;

(ख) उससे सुसंगत कोई प्रमाणन पद्धति विवरण प्रकट करेगा ;

(ग) उसके प्रमाणकर्ता प्राधिकारी प्रमाणपत्र, यदि कोई हो, के प्रतिसंहरण या निलंबन की सूचना प्रकट करेगा ; और

(घ) ऐसा कोई अन्य तथ्य प्रकट करेगा, जो किसी [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र की, जिसे उस प्राधिकारी ने जारी किया है, विश्वसनीयता को या उस प्राधिकारी की अपनी सेवाओं को निष्पादित करने की योग्यता को, तात्त्विक और प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है ।

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 16 द्वारा लोप किया गया ।

(2) जहां प्रमाणकर्ता प्राधिकारी की राय में कोई घटना घटित हुई है या ऐसी कोई परिस्थिति उत्पन्न हुई है जिससे उसकी कंप्यूटर प्रणाली की अखंडता या ऐसी शर्तों पर, जिनके अध्यधीन उसका [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र अनुदत्त किया गया था, प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, तब प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, –

(क) ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को, जिसके उससे प्रभावित होने की संभावना है, अधिसूचित करने के लिए युक्तियुक्त प्रयास करेगा ; या

(ख) ऐसी घटना या अवस्थिति से निपटने के लिए प्रमाणन पद्धति विवरण में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार कार्य करेगा ।

अध्याय 7

[1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र

35. प्रमाणकर्ता प्राधिकारी द्वारा [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र जारी किया जाना – (1) कोई भी व्यक्ति, [1][इलैक्ट्रानिक चिह्नक] प्रमाणपत्र जारी करने के लिए प्रमाणकर्ता प्राधिकारी को ऐसे प्ररूप में आवेदन कर सकेगा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किया जाए ।

(2) ऐसे प्रत्येक आवेदन के साथ प्रमाणकर्ता प्राधिकारी को संदेय की जाने वाली पच्चीस हजार रुपए से अनधिक उतनी फीस संलग्न होगी, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए :

परन्तु उपधारा (2) के अधीन फीस विहित करते समय, आवेदकों के विभिन्न वर्गों के लिए विभिन्न फीसें विहित की जा सकेंगी ।

(3) ऐसे प्रत्येक आवेदन के साथ प्रमाणन पद्धति विवरण संलग्न होगा या जहां ऐसा विवरण नहीं है, वहां ऐसी विशिष्टियों वाला विवरण संलग्न होगा, जो विनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए ।

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(4) उपधारा (1) के अधीन आवेदन प्राप्त होने पर, प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, उपधारा (3) के अधीन प्रमाणन पद्धति विवरण या अन्य विवरण पर विचार करने और ऐसी जांच करने के पश्चात् जो वह ठीक समझे, अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र मंजूर कर सकेगा या आवेदन को, उन कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, नामंजूर कर सकेगा :

[1]* * * *

[2][परन्तु] कोई भी आवेदन तब तक नामंजूर नहीं किया जाएगा जब तक कि आवेदक को प्रस्तावित नामंजूरी के विरुद्ध कारण दर्शित करने के लिए उचित अवसर न दे दिया गया हो ।

36. अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र जारी करने पर व्यपदेशन – अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र जारी करते समय प्रमाणकर्ता प्राधिकारी यह प्रमाणित करेगा कि –

(क) उसने इस अधिनियम, उसके अधीन बनाए गए नियमों और विनियमों का अनुपालन किया है ;

(ख) उसने अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र प्रकाशित किया है या उसे उस पर विश्वास करने वाले व्यक्ति को अन्यथा उपलब्ध कराया है और उपयोगकर्ता ने उसे स्वीकार किया है ;

(ग) उपयोगकर्ता के पास अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में सूचीबद्ध लोक कुंजी के अनुरूप प्राइवेट कुंजी है ;

[3][(गक) उपयोगकर्ता के पास ऐसी प्राइवेट कुंजी है, जो अंकीय चिह्नक का सृजन करने में समर्थ है ;

(गख) प्रमाणपत्र में सूचीबद्ध की जाने वाली लोक कुंजी के उपयोगकर्ता द्वारा धारित प्राइवेट कुंजी द्वारा लगाए गए अंकीय

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 17 द्वारा लोप किया गया ।

[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 17 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[3] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 18 द्वारा अंत:स्थापित ।

चिह्नक का सत्यापन करने के लिए उपयोग किया जा सकता है ।]

(घ) उपयोगकर्ता की लोक कुंजी और प्राइवेट कुंजी मिलकर एक कार्यकारी कुंजी युग्म बनाती है ;

(ङ) अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में अंतर्विष्ट सूचना सही है ; और

(च) उसके पास किसी ऐसे सारवान् तथ्य की जानकारी नहीं है जिसे यदि अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में सम्मिलित किया गया होता तो उसका खंड (क) से खंड (घ) में किए गए व्यपदेशनों की विश्वसनीयता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता ।

37. अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र का निलंबन – (1) ऐसा प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, जिसने अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र जारी किया है, उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, –

(क) (i) अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में सूचीबद्ध उपयोगकर्ता से ; या

(ii) उस उपयोगकर्ता की ओर से कार्य करने के लिए सम्यक् रूप से प्राधिकृत किसी व्यक्ति से, उस आशय के अनुरोध की प्राप्ति पर ;

(ख) यदि उसकी यह राय है कि अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र लोक हित में निलंबित किया जाना चाहिए,

ऐसे अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र को निलंबित कर सकेगा ।

(2) अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र पन्द्रह दिन से अधिक के लिए तब तक निलंबित नहीं किया जाएगा जब तक कि उपयोगकर्ता को उस विषय पर सुने जाने का अवसर न दे दिया गया हो ।

(3) इस धारा के अधीन अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र के निलंबन पर प्रमाणकर्ता प्राधिकारी उपयोगकर्ता को उसकी संसूचना देगा ।

38. अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र का प्रतिसंहरण – (1) प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, अपने द्वारा जारी किया गया अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र उस दशा में प्रतिसंहृत कर सकेगा –

(क) जहां उपयोगकर्ता या उसके द्वारा प्राधिकृत कोई अन्य व्यक्ति उस आशय का अनुरोध करे ; या

(ख) उपयोगकर्ता की मृत्यु हो जाती है ; या

(ग) फर्म का विघटन या कंपनी का परिसमापन हो जाता है, यदि उपयोगकर्ता फर्म या कंपनी है ।

(2) उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए और उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, अपने द्वारा जारी किए गए अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र को किसी भी समय प्रतिसंहृत कर सकेगा, यदि उसकी यह राय है कि, –

(क) अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में दिया गया कोई सारवान् तथ्य मिथ्या है, या उसे छिपा दिया गया है ;

(ख) अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र के जारी किए जाने से संबंधित अपेक्षाएं पूरी नहीं की गई हैं ;

(ग) प्रमाणकर्ता प्राधिकारी की प्राइवेट कुंजी या सुरक्षा प्रणाली ऐसी रीति से गोपनीय नहीं रह गई है जिससे अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र की विश्वसनीयता तात्विक रूप से प्रभावित होती है ;

(घ) उपयोगकर्ता को दिवालिया या मृत घोषित किया गया है या जहां उपयोगकर्ता फर्म या कंपनी है वहां उसका विघटन या परिसमापन हो गया है या वह अन्यथा अस्तित्व में नहीं रह गई है ।

(3) कोई अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र तब तक प्रतिसंहृत नहीं किया जाएगा जब तक कि उपयोगकर्ता को मामले में सुनवाई का अवसर न दे दिया गया हो ।

(4) इस धारा के अधीन अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र का प्रतिसंहरण होने पर प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, उसकी संसूचना उपयोगकर्ता को देगा ।

39. निलंबन या प्रतिसंहरण की सूचना – (1) जहां कोई अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र, धारा 37 या धारा 38 के अधीन निलंबित या प्रतिसंहृत किया जाता है वहां प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, यथास्थिति, ऐसे निलंबन या प्रतिसंहरण की सूचना, ऐसी सूचना के प्रकाशन के लिए अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट निधान में, प्रकाशित करेगा ।

(2) जहां एक से अधिक निधान विनिर्दिष्ट किए गए हैं वहां प्रमाणकर्ता प्राधिकारी, ऐसे सभी निधानों में, यथास्थिति, ऐसे निलंबन या प्रतिसंहरण की सूचनाएं प्रकाशित करेगा ।

अध्याय 8

उपयोगकर्ताओं के कर्तव्य

40. कुंजी-युग्म का उत्पादित किया जाना – जहां कोई अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र, जिसकी लोक कुंजी उस उपयोगकर्ता की प्राइवेट कुंजी के अनुरूप है जो अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में सूचीबद्ध की जानी है, उपयोगकर्ता द्वारा स्वीकार कर लिया गया है [1][वहां] ऐसा उपयोगकर्ता सुरक्षा प्रक्रिया अपना कर [1][उस कुंजी-युग्म को] तैयार करेगा ।

[2][**40क. इलैक्ट्रानिक चिह्नक प्रमाणपत्र के उपयोगकर्ता के कर्तव्य** – इलैक्ट्रानिक चिह्नक प्रमाणपत्र के संबंध में उपयोगकर्ता ऐसे कर्तव्यों का पालन करेगा, जो विहित किए जाएं ।]

41. अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र की स्वीकृति – (1) किसी उपयोगकर्ता के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र स्वीकार कर लिया है यदि वह अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र को –

(क) एक या अधिक व्यक्तियों को ;

---

[1] का. आ. 1015 (अ), तारीख 19-9-2002 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 19 द्वारा अंत:स्थापित ।

(ख) किसी निधान में, प्रकाशित करता है या उसका प्रकाशन प्राधिकृत करता है,

या अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र के लिए अपना अनुमोदन किसी रीति में अन्यथा प्रदर्शित करता है ।

(2) अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र को स्वीकार करके उपयोगकर्ता उन सभी को, जो अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में अंतर्विष्ट सूचना पर युक्तियुक्त रूप से विश्वास करते हैं, प्रमाणित करता है कि –

(क) उपयोगकर्ता के पास अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में सूचीबद्ध लोक कुंजी के अनुरूप प्राइवेट कुंजी है और वह उसे रखने का हकदार है ;

(ख) प्रमाणकर्ता प्राधिकारी को उपयोगकर्ता द्वारा किए गए सभी व्यपदेशन और अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में अंतर्विष्ट सूचना से सुसंगत सभी तात्विक तथ्य सही हैं ;

(ग) अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में की ऐसी सभी सूचनाएं, जो उपयोगकर्ता की जानकारी में हैं, सही हैं ।

42. प्राइवेट कुंजी का नियंत्रण – (1) प्रत्येक उपयोगकर्ता, अपने अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में सूचीबद्ध लोक कुंजी के अनुरूप प्राइवेट कुंजी का नियंत्रण रखने में युक्तियुक्त सावधानी बरतेगा और [1]***

(2) यदि अंकीय चिह्नक प्रमाणपत्र में सूचीबद्ध लोक कुंजी के अनुरूप प्राइवेट कुंजी गोपनीय नहीं रह गई है, तो उपयोगकर्ता, इसकी संसूचना प्रमाणकर्ता प्राधिकारी को ऐसी रीति में अविलम्ब देगा, जो विनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट की जाए ।

स्पष्टीकरण – शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि उपयोगकर्ता तब तक दायी होगा जब तक कि उसने प्रमाणकर्ता प्राधिकारी को सूचित न कर दिया हो कि प्राइवेट कुंजी

---

[1] का. आ. 1015 (अ), तारीख 19-9-2002 द्वारा लोप किया गया ।

गोपनीय नहीं रह गई है ।

अध्याय 9

[1][शास्तियां, प्रतिकर और अधिनिर्णय]

43. कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली आदि को नुकसान के लिए [2][शास्ति और प्रतिकर] – यदि कोई व्यक्ति, ऐसे स्वामी या किसी अन्य व्यक्ति की, जो किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क प्रणाली का भारसाधक है, अनुज्ञा के बिना, –

(क) ऐसे कंप्यूटर, कंप्यूटर नेटवर्क [3][या कंप्यूटर संसाधन] प्रणाली में पहुंचता है या पहुंच प्राप्त करता है ;

(ख) ऐसे कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क से कोई डाटा, कंप्यूटर डाटा संचय या सूचना, जिसके अंतर्गत किसी स्थानांतरणीय भंडारण माध्यम में धृत या संचित कोई सूचना या डाटा भी हैं, डाउनलोड करता है, प्रतिलिपि करता है, या उसका उद्धरण लेता है ;

(ग) किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क में किसी कंप्यूटर संदूषक या कंप्यूटर वाइरस का प्रवेश करता है, या प्रवेश करवाता है ;

(घ) ऐसे कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क में के किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क, डाटा, कंप्यूटर डाटा संचय या किसी अन्य कार्यक्रम को नुकसान पहुंचाता है या पहुंचवाता है ;

(ङ) किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क को विच्छिन्न करता है या करवाता है ;

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 20 द्वारा प्रतिस्थापित ।
[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 21 द्वारा प्रतिस्थापित ।
[3] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 21 द्वारा अंतःस्थापित ।

(च) किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क में पहुंच के लिए प्राधिकृत किसी व्यक्ति की किसी भी साधन से पहुंच से इनकार करता है या करवाता है ;

(छ) इस अधिनियम, इसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के उल्लंघन में, किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क में किसी व्यक्ति की पहुंच को सुकर बनाने के लिए कोई सहायता प्रदान करता है ;

(ज) किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क में छेड़छाड़ या छलसाधन करके, किसी व्यक्ति द्वारा उपभोग की गई सेवाओं के प्रभारों को किसी अन्य व्यक्ति के लेखे में डालता है,

तो वह इस प्रकार प्रभावित व्यक्ति को प्रतिकर के रूप में ऐसी नुकसानी का जो एक करोड़ रुपए से अधिक नहीं होगी, संदाय करने का दायी होगा ।

[1][(झ) किसी कंप्यूटर संसाधन में विद्यमान किसी सूचना को नष्ट करता है, हटाता है या उसमें परिवर्तन करता है या उसके महत्व या उपयोगिता को कम करता है या उसे किन्हीं साधनों द्वारा हानिकर रूप से प्रभावित करता है ;

(ञ) किसी कंप्यूटर संसाधन के लिए प्रयुक्त किसी कंप्यूटर स्रोत कोड को नुकसान पहुंचाने के आशय से चुराता है, छिपाता है, नष्ट या परिवर्तित करता है या किसी व्यक्ति से उसकी चोरी कराता है या उसे छिपवाता, नष्ट या परिवर्तित कराता है,]

[2][तो वह इस प्रकार प्रभावित व्यक्ति को प्रतिकर के रूप में नुकसानी का संदाय करने का दायी होगा ;]

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 21 द्वारा अंतःस्थापित ।

[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 21 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(i) "कंप्यूटर संदूषक" से कंप्यूटर अनुदेशों का कोई ऐसा सेट अभिप्रेत है, जो निम्नलिखित के लिए अभिकल्पित किया गया हो, –

(क) किसी कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क में के डाटा या कार्यक्रम को उपांतरित, नष्ट, अभिलिखित या पारेषित करने ; या

(ख) कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क के सामान्य प्रवर्तन का किसी भी साधन से अनधिकार ग्रहण करने,

(ii) "कंप्यूटर डाटा संचय" से पाठ, प्रतिबिंब, श्रव्य, दृश्य में सूचना, जानकारी, तथ्य, संकल्पना और अनुदेशों का व्यपदेशन अभिप्रेत है, जो प्रारूपित रीति में तैयार किया जा रहा है या तैयार किया गया है अथवा कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क द्वारा उत्पादित किया गया है और जो कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली या कंप्यूटर नेटवर्क में उपयोग के लिए आशयित है ;

(iii) कंप्यूटर वाइरस से ऐसा कोई कंप्यूटर अनुदेश, सूचना, डाटा या कार्यक्रम अभिप्रेत है जो किसी कंप्यूटर साधन के निष्पादन को नष्ट करता है, नुकसान पहुंचाता है, ह्रास करता है या प्रतिकूल प्रभाव डालता है अथवा स्वयं को किसी अन्य कंप्यूटर साधन से संलग्न कर लेता है और वह तब प्रवर्तित होता है जब कोई कार्यक्रम, डाटा या अनुदेश निष्पादित किया जाता है या उस कंप्यूटर साधन में कोई अन्य घटना घटती है ;

(iv) "नुकसान" से किसी माध्यम द्वारा किसी कंप्यूटर साधन को नष्ट करना, परिवर्तित करना, हटाना, जोड़ना, उपान्तरित या पुनः व्यवस्थित करना अभिप्रेत है ।

[1][(v) "कंप्यूटर स्रोत कोड" से कंप्यूटर संसाधन के कार्यक्रमों, कंप्यूटरों समादेशों, डिजाइन और रेखांक तथा कार्यक्रम विश्लेषण को किसी रूप में सूचीबद्ध करना अभिप्रेत है ।]

[2][**43क. डाटा को संरक्षित रखने में असफलता के लिए प्रतिकर** – जहां कोई निगमित निकाय ऐसे किसी कंप्यूटर संसाधन में किसी संवेदनशील व्यक्तिगत डाटा या सूचना को रखता है, उसका संव्यवहार करता है या उसको संभालता है जो उसके स्वामित्व में, नियंत्रण में है या जिसका वह प्रचालन करता है, युक्तियुक्त सुरक्षा पद्धतियों और प्रक्रियाओं के कार्यान्वयन और अनुरक्षण में उपेक्षा करता है और उसके द्वारा किसी व्यक्ति को सदोष हानि या सदोष लाभ पहुंचाता है, वहां ऐसा निगमित निकाय, इस प्रकार प्रभावित व्यक्ति को प्रतिकर के रूप में नुकसानी का संदाय करने के लिए दायी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(i) "निगमित निकाय" से कोई कंपनी अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत वाणिज्यिक या वृत्तिक क्रियाकलापों में लगी हुई फर्म, एकल स्वामित्व या व्यष्टियों का कोई अन्य संगम भी है ;

(ii) "युक्तियुक्त सुरक्षा पद्धतियों और प्रक्रियाओं" से ऐसी अप्राधिकृत पहुंच, नुकसानी, उपयोग, उपांतरण, प्रकटन या ह्रास, जो, यथास्थिति, पक्षकारों के बीच किसी करार में विनिर्दिष्ट किया जाए या जो तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में विनिर्दिष्ट किया जाए ऐसी सूचना को संरक्षित करने के लिए अभिकल्पित सुरक्षा पद्धतियां और प्रक्रियाएं और ऐसे करार या किसी विधि के अभाव में, ऐसी युक्तियुक्त सुरक्षा पद्धतियां और प्रक्रियाएं, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसे वृत्तिक निकायों या संगमों के परामर्श से, जिन्हें वह उपयुक्त समझे, विहित की जाएं, अभिप्रेत हैं ;

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 21 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 21 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(iii) "संवेदनशील व्यक्तिगत डाटा या सूचना" से ऐसी व्यक्तिगत सूचना अभिप्रेत है जो केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसे वृत्तिक निकायों या संगमों के परामर्श से, जिन्हें वह उचित समझे, विहित की जाए ।]

44. जानकारी, विवरणी, आदि देने में असफल रहने के लिए शास्ति – यदि कोई ऐसा व्यक्ति, जिससे इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों या विनियमों के अधीन, –

(क) नियंत्रक अथवा प्रमाणकर्ता प्राधिकारी को कोई दस्तावेज, विवरणी या रिपोर्ट देना अपेक्षित है, उसे देने में असफल रहेगा, तो वह, ऐसी प्रत्येक असफलता के लिए एक लाख पचास हजार रुपए से अनधिक की शास्ति का दायी होगा ;

(ख) विनियमों में उनके देने के लिए विनिर्दिष्ट समय के भीतर कोई विवरणी फाइल करने या कोई जानकारी, पुस्तक या अन्य दस्तावेज देना अपेक्षित है, विनियमों में उनके देने के लिए विनिर्दिष्ट समय के भीतर विवरणी फाइल करने या उसे देने में असफल रहेगा, तो वह, ऐसे प्रत्येक दिन के लिए, जिसके दौरान ऐसी असफलता बनी रहती है, पांच हजार रुपए से अनधिक की शास्ति का दायी होगा ;

(ग) लेखा बहियां या अभिलेख बनाए रखना अपेक्षित है, उन्हें बनाए रखने में असफल रहता है, तो वह, ऐसे प्रत्येक दिन के लिए, जिसके दौरान ऐसी असफलता बनी रहती है, दस हजार रुपए से अनधिक की शास्ति का दायी होगा ।

45. अवशिष्ट शास्ति – जो कोई, इस अधिनियम के अधीन बनाए

गए किन्हीं नियमों या विनियमों का उल्लंघन करेगा, तो वह ऐसे उल्लंघन के लिए, जिसके लिए अलग से किसी शास्ति का उपबंध नहीं किया गया है, ऐसे उल्लंघन से प्रभावित व्यक्ति को पच्चीस हजार रुपए से अनधिक के प्रतिकर का संदाय करने या पच्चीस हजार रुपए से अनधिक की शास्ति का दायी होगा ।

46. न्यायनिर्णयन करने की शक्ति – (1) इस अध्याय के अधीन न्यायनिर्णयन करने के प्रयोजन के लिए, जहां किसी व्यक्ति ने इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम, विनियम, [1][दिए गए निदेश या किए गए आदेश के उपबंधों में से किसी का उल्लंघन किया है, जो शास्ति या प्रतिकर का संदाय करने का दायी बनाता है] वहां केन्द्रीय सरकार, उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए भारत सरकार के निदेशक की पंक्ति से अनिम्न किसी अधिकारी या राज्य सरकार के किसी समतुल्य अधिकारी को, केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित रीति में जांच करने के लिए, न्यायनिर्णायक अधिकारी के रूप में नियुक्त कर सकेगी ।

[2][(1क) उपधारा (1) के अधीन नियुक्त न्यायनिर्णायक अधिकारी उन मामलों का न्यायनिर्णयन करने की अधिकारिता का प्रयोग करेगा, जिनमें क्षति या नुकसानी के लिए दावा पांच करोड़ रुपए से अधिक का नहीं है :

परंतु पांच करोड़ रुपए से अधिक की क्षति या नुकसानी के लिए दावे की बाबत अधिकारिता सक्षम न्यायालय में निहित होगी ।]

(2) न्यायनिर्णायक अधिकारी, उपधारा (1) में निर्दिष्ट व्यक्ति को

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 23 द्वारा प्रतिस्थापित ।
[2] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 23 द्वारा अंत:स्थापित ।

उस मामले में अभ्यावेदन करने के लिए युक्तियुक्त अवसर देगा और यदि ऐसी जांच के पश्चात्, उसका यह समाधान हो जाता है कि उस व्यक्ति ने उल्लंघन किया है, तो वह, उस धारा के उपबंधों के अनुसार ऐसी शास्ति अधिरोपित कर सकेगा या ऐसा प्रतिकर अधिनिर्णीत कर सकेगा, जिसे वह ठीक समझे ।

(3) कोई व्यक्ति, न्यायनिर्णायक अधिकारी के रूप में तब तक नियुक्त नहीं किया जाएगा जब तक कि उसके पास सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में ऐसा अनुभव और ऐसा विधिक या न्यायिक अनुभव न हो, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किया जाए ।

(4) जहां एक से अधिक न्यायनिर्णायक अधिकारी नियुक्त किए गए हैं वहां केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा, उन विषयों और स्थानों को विनिर्दिष्ट करेगी, जिनकी बाबत ऐसे अधिकारी अपनी अधिकारिता का प्रयोग करेंगे ।

(5) प्रत्येक न्यायनिर्णायक अधिकारी को सिविल न्यायालय की वे शक्तियां होंगी, जो धारा 58 की उपधारा (2) के अधीन साइबर अपील अधिकरण को प्रदान की गई हैं, और :-

(क) उसके समक्ष की सभी कार्यवाहियां भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 193 और धारा 228 के अर्थान्तर्गत न्यायिक कार्यवाहियां समझी जाएंगी ;

(ख) उसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 345 और धारा 346 के प्रयोजनार्थ सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

[1][(ग) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के आदेश

---

[1] 2009 के अधिनियम सं. 10 की धारा 23 द्वारा अंतःस्थापित ।

21 के प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा] ।

47. न्यायनिर्णायक अधिकारी द्वारा विचार की जाने वाली बातें – इस अध्याय के अधीन प्रतिकर की मात्रा का न्यायनिर्णयन करते समय, न्यायनिर्णायक अधिकारी, निम्नलिखित बातों पर सम्यक् ध्यान देगा, अर्थात् :–

(क) व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप हुए अभिलाभ या अनुचित फायदे की रकम, जहां वह परिमाण निर्धारण योग्य हो ;

(ख) व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति को हुई हानि की रकम ;

(ग) व्यतिक्रम की आवृत्तीय प्रकृति ।

क्रमशः आगामी अंक में......

cover iii

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	–	–	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. बी. परांजपे - 1990	40	–	–	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	–	–	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	–	–	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	–	–	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	–	–	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	–	–	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख -1999	293	–	–	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	–	–	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	–	–	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ -2001	425	–	–	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	–	–	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	–	–	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	–	–	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	–	–	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	–	290	–
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	–	60	–

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Cover iv

पी एल डी (सी. डी)-5-2019
भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in